सूली और सिंहासन

[नैतिक आस्था की जीवन्तगाथा]

लेखक

श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री

सम्पादक

श्री ज्ञानचन्द्र भारिल्ल

प्रकाशक

तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

उदयपुर

उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी स्वर्ण जयन्ती समारोह
के उपलक्ष्य में प्रकाशित

□ प्रकाशक एवं प्राप्तिकेन्द्र
तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्कल, उदयपुर (राजस्थान)

□ प्रथम बार
वि० सं० २०३४ चैत्र सुदी १३
महावीर जयन्ती
अप्रैल, १९७७

□ मुद्रक
श्रीचन्द सुराना के लिए
शैल प्रिन्टर्स
१८/२०३ ए, माईथान, आगरा-२

□ मूल्य
दो रुपये पचास पैसे

प्रकाशकीय

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय का महान सद्भाग्य है कि उपाध्याय अध्यात्मयोगी राजस्थान केसरी प्रसिद्ध वक्ता सद्गुरुवर्य श्री पुष्कर मुनिजी महाराज की असीम कृपा से उसने अपने स्वल्प जीवन काल में साहित्य की प्रत्येक विधा में महनीय ग्रन्थ रत्न प्रकाशित कर जन-जन के अन्तर्मानस में अपना गौरवपूर्ण स्थान बनाया है। उसी लड़ी की कड़ी में प्रस्तुत पुस्तक भी है।

प्रस्तुत पुस्तक भी अन्य पुस्तकों की तरह अत्यधिक लोकप्रिय बनेगी, क्योंकि यह उपन्यास की शैली में लिखी गयी है। पुस्तक की प्रत्येक पंक्ति में देवेन्द्र मुनि जी की प्रतिभा के सहज दर्शन होते हैं। सदाचार की प्रेरणा के मंजुलस्वर मुखर हो रहे हैं।

आज के युग में जहाँ नैतिक निष्ठा और सदाचार की शक्ति क्षीण होती जा रही है वहाँ इस उपन्यास की कथावस्तु हमें नैतिकता की, सदाचार की ओर अधिक आत्मबल की प्रेरणा दे रही है। हमें विश्वास है कि यह रोचक उपन्यास आज के युवक-युवतियों का मार्ग दर्शन कर उनके गिरते हुए मनोबल को सहारा देने में एक सुदृढ़ स्तम्भ का काम करेगा।

—मन्त्री—

तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

लेखक की कलम से

जैन साहित्य के इतिहास में श्रेष्ठी सुदर्शन का पवित्र च अत्यन्त दिलचस्प रहा है। प्राचीन युग से ही मनीषी लेखक उ महनीय जीवन पर लिखते रहे हैं। आज तक अनेक ने उसके औ को चित्रित किया है। बड़ा अद्भुत है उसका जीवन। जो एक नहीं अपितु अनेक बार परीक्षण प्रस्तर पर कसा गया है, ज्यों ज्यों उसे कसा जाता है, त्यों-त्यों उसमें अधिक निखार आता है

सुदर्शन सेठ का चरित्र जैन कथा साहित्य में एक जगमगा पृष्ठ रहा है। इस पर लोकभाषा-गुजराती एवं राजस्थानी अनेक रास तथा चौपाई मिलती हैं। प्राचीन संस्कृत-प्रा साहित्य में इस कथा का मूल स्रोत कहाँ है? यह अभी अनुसन्ध का विषय है। पिछले दिनों गुरुदेव श्री द्वारा लिखित 'जैन कथ का सम्पादन करते समय सुदर्शन चरित्र के विषय में भी अनुसन्धान चला था, अनेक ग्रन्थों को टटोलने पर भी उल्लेखनीय पुष्ट स्रोत तो नहीं मिला, पर यह पता चला पूर्णिमागच्छ के मानतुंगसूरि कृत 'जयन्ती चरित' की वृत्ति जो कि उन्हीं के शिष्य श्री मलयप्रभ ने (वि० सं० १२६० लिखी है, उसमें शील पालन पर सुदर्शन सेठ-मनोरमा का कथा दिया है। सम्भवतः यह कथा-सूत्र भी प्राचीन ग्रन्थों से ही लि हो। अनुश्रुति में सुदर्शन सेठ की कथा काफी प्रसिद्ध है।

एक ओर सच्चरित्र की जीति-जागती प्रतिमा है तो दूसरी र वासना के दल-दल में फँसी हुई आत्माएँ हैं जो हाव-भाव र कटाक्ष से उसे फँसाने का प्रयास करती हैं किन्तु उनके ास विफल हो जाते हैं। मकड़ी की तरह वे स्वयं ही जाल में । जाती हैं। वासना पर सदाचार की अपूर्व विजय की रोचक ा है यह। सच्चरित्र की अद्‌भुत शक्ति से तीक्ष्ण सूली भी ों के सुकुमार सिंहासन के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

सुदर्शन का अद्‌भुत मनोबल, चरित्रबल एक ओर आकाश ऊँचाइयों को छूता है तो दूसरी ओर कपिला और अभया की चता और वासना की निकृष्टतम भूमिका पाताल की नीची ी से भी नीची चली गयी है। उच्चता और नीचता, सदाचार र वासना के इस द्वन्द्व में सदाचार की चमत्कार पूर्ण विजय की एक गाथा छिपी है।

आधुनिक युग में उपन्यास, साहित्य की एक अत्यन्त लोकप्रिय धा रही है। इस विधा में लिखने का मेरा यह प्रथम प्रयास मैं इस विधा में कहाँ तक सफल हो सका हूँ इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ता हूँ।

प्रस्तुत उपन्यास को उपन्यासकला की दृष्टि से स्नेहमूर्ति र जी शास्त्री ने देखकर आवश्यक परिष्कार किया तदर्थ उन्हें साधुवाद प्रदान करता हूँ।

परम श्रद्धेय सद्‌गुरुवर्य उपाध्याय प्रवर अध्यात्मयोगी स्थान केसरी पुष्कर मुनिजी महाराज की असीम कृपा से ही

मैं साहित्य के क्षेत्र में प्रगति कर रहा हूँ अतः उनके म
उपकार को मैं कैसे विस्मृत हो सकता हूँ।

साथ ही पुस्तक को मुद्रणकला की दृष्टि से स्नेह
श्रीचन्द जी सुराना ने निखारने का प्रयास किया है। अतः उ
स्नेहपूर्ण व्यवहार को भी भुला नहीं सकता।

आशा करता हूँ, पाठक इस पुस्तक से सदाचार की
प्रेरणा लेंगे।

मैसूर (कर्नाटक) —देवेन्द्र मु
सन् १९७७

अनुक्रम

※ नया प्रकाशन : पढ़िये ※

जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा

समस्त जैन साहित्य का तुलनात्मक परिचय। एक ही ग्रन्थ प

से समूचे जैन वाङ्मय का रहस्य, विवरण और

सैद्धान्तिक-स्वरूप का परिचय प्राप्त

किया जा सकता है।

लेखक

श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री

पृष्ठ : लगभग ८००

मूल्य : चालीस रुपये

• • •

जैन कथाएँ

(भाग १ से २५ तक)

जैन इतिहास, साहित्य, काव्य और पुराण ग्रन्थों की

सैकड़ों रोचक कथाएँ।

प्रत्येक भाग का मूल्य—तीन रुपया

वह मन्त्र क्या था ?

सुबह का सुहावना समय है। आकाश नीला और
च्छ है। सूर्य की चमचमाती किरणें पर्वतों के शिखरों पर
ना विखेर कर अव वन के सघन वृक्षों से आँखमिचौनी
ल रही थीं। उस समय एक तेजस्वी वालक वहुत-सी
यों को लिए धीरे-धीरे जंगल की ओर चला जा रहा था।
ह उसका प्रतिदिन का कार्यक्रम था। सुबह वह उन गायों
ो चराने के लिए इस जंगल में आता था और शाम तक,
ब गायें भरपेट घास चर चुकती थीं, तव वह घर की ओर
ौट आता था। वह बालक वैसे तो अपढ़ था, किन्तु उसके
हरे से एक सौम्य प्रभाव अभिव्यक्त होता था, जो उसके
ालोकित भविष्य की सूचना देता था।

हरे-हरे और मखमल से मुलायम घास में इधर-उधर
ुँह मारती हुई वे स्वस्थ व मस्त गायें धीरे-धीरे जंगल की
ोर बढ़ रही थीं। उनके गले में बँधी हुई मधुर मधुर
ावाज करती हुई घंटियाँ मानों उनकी आन्तरिक निश्चि-
तता और आनन्द को ही प्रकट कर रही थीं। वे इसलिए
नश्चिन्त थी कि उनका सजग रखवाला—वह वालक
उनके साथ है, और आज के लिए पेट भर घास उस वन-

अंतर में खूब लहलहा रहा है। कल की चिन्ता उन्हें नहीं है। और निश्चिन्तता का यदि कोई रहस्य है तो यही है।

जिस युग की यह कथा है, वह युग भारत के इतिहास में स्वर्णयुग के नाम से उट्टङ्कित है। क्योंकि उस युग में—लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व—भारत अपनी समृद्धि के शिखर पर था। समृद्धि केवल धन-धान्य और सांसारिक सुख-वैभव की ही नहीं, उस समय भारत के निवासी अपने पवित्र चरित्र की दृष्टि से भी उच्च तथा समृद्ध थे। इस कारण वे सुखी भी थे।

हमारी कथा का नायक—वह सुखी और निश्चिन्त ...क—चम्पानगरी का निवासी था। भारतवर्ष के अंगदेश ... वह राजनगरी अपने वैभव तथा शोभा से इन्द्र के लिए ... यदि ईर्ष्या का नहीं तो कम से कम स्पर्धा का कारण ... बनी हुई थी। उस नगरी में क्या नहीं था ? ऋद्धि और समृद्धि से चम्पानगरी भरी हुई थी। स्वस्थ, सुखी और चरित्रवान नागरिकों के अनन्त आकाश को छूते हुए भवन और उच्च अट्टालिकाएं तथा उन पर फहराती ध्वजाएं इस ...गरी के आनन्दमय पवित्र जीवन का यशोगान करती थीं। हाट-बाजारों में हीरे-पन्ने, माणक और मोतियों के बिखरे हुए ढेर रात को भी दिन का प्रकाश दिया करते थे। अभाव नाम की कोई वस्तु उस नगरी में थी ही नहीं। उस नगरी के पुरुष और स्त्रियाँ देवों और देवियों के समान सुख से विहार करते थे और राजा दधिवाहन इन्द्र के समान

उनकी रक्षा किया करता था। सच है, पराक्रमी और प्रजावत्सल राजा की शीतल व सुखद छाया में प्रजा सुख की सांस लेती है, आनन्द का अमृत पिया करती है।

ऐसे युग में, ऐसी नगरी का निवासी, हमारा चरित्र-नायक वह बालक, जिसका नाम सुभग था, अपनी गायों को लिए वन में आ पहुँचा। गायें इधर-उधर बिखर कर चरने लगीं और सुभग उनका ध्यान रखता हुआ कभी मिट्टी के घरोंदे से, कभी किसी वृक्ष की शाखाओं से और कभी कंकड़-पत्थरों से खेलता रहा। कभी प्रकृति-नटी की सौन्दर्य सुषमा को निहार कर आनन्द से झूम उठता था।

दोपहर होने पर बालक ने कुछ देर स्वयं विश्राम करने तथा बहुत देर से चिलचिलाती धूप में चरती हुई गायों को विश्राम देने का विचार किया। वह उन्हें एकत्र करके कुछ अधिक छायादार और सघन स्थल की ओर बढ़ा।

समीप ही शीतल और स्वच्छ जल से प्रवाहित झरना था। उसके किनारे बड़े-बड़े छायादार वृक्ष थे। वहाँ पहुँच कर गायों ने पानी पिया और तृप्त हो कर इधर-उधर बैठ-कर वे अधमुंदी आँखों को वन की शोभा से देखती हुई भी और न देखती हुई भी जुगाली में रत हो गईं। बालक ने भी हाथों को अंजलि बना कर पानी पिया और फिर विश्राम करने के लिए वह एक बड़े-से वृक्ष की ओर गया। वह

वृक्ष के समीप पहुँचा ही था कि उसने देखा—एक तरुण-तपस्वी महात्मा उस वृक्ष के नीचे शान्त मुद्रा में ध्यानस्थ बैठे हैं। महात्मा के चेहरे से एक अलौकिक तेज फूट रहा है, जिसे देख कर वह बालक मुग्ध हो गया और टकटकी लगा कर देखता ही रह गया............

कुछ क्षण बाद बालक ने दोनों हाथ नम्रता से जोड़ कर उन महात्मा को प्रणाम किया। किन्तु महात्मा ध्यान में लीन थे। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। बालक विस्मय और श्रद्धा में डूबा हुआ चुपचाप समीप ही बैठ गया और मुनिराज के ध्यान पूर्ण होने की प्रतीक्षा करने लगा। मुनिराज के चेहरे की कान्ति इतनी प्रभावोत्पादक थी कि बालक देखता ही रहा.......बालक देखता ही रहा और यह भी भूल गया कि समय कितना व्यतीत हो गया है।

अन्त में मुनिराज ने अपना ध्यान पूर्ण किया। एक स्नेह और करुणा से आप्लावित दृष्टि उस बालक की ओर उन्होंने फेंकी। उस करुणामयी दृष्टि ने उस भोले और होनहार बालक के मन में एक विचित्र और अजानी भावना को जन्म दिया। बालक भोला था, बालक ही तो था। अतः वह उस दृष्टि के मर्म को पूरा जान नहीं पाया, किन्तु आकाश और पृथ्वी ने उस दृष्टि में छिपी हुई उस बालक की महान् भविष्य-कथा को पढ़ लिया।

हम उसी कथा की ओर धीरे-धीरे बढ़ रहे हैं।

बालक ने महात्मा को ध्यान से निवृत्त हुआ देख कर फिर से हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम किया ही था कि वे महात्मा एक मन्त्र का जाप करते हुए पक्षी की भाँति अनन्त आकाश में उड़ गये..........

यह देखकर उस बालक के विस्मय का कोई पार ही नहीं रहा। वह आश्चर्यचकित होकर उन महात्मा को आकाशमार्ग से उड़कर जाते हुए देखता रह गया........

कुछ देर बाद जब बालक की संज्ञा लौटी, तब उसने देखा कि अन्धकार घिर चला है। उसकी गायें आसपास कहीं नहीं हैं। वे सन्ध्या को घर लौटने का समय हुआ जानकर स्वयं ही लौट गई थीं। बालक की दृष्टि अब भी शून्य आकाश में उस दिशा में बार-बार उड़ जाती थी, जिधर वे आकाशगामी महात्मा अपने मन्त्र की शक्ति से उड़कर चले गये थे।

—और बालक निरन्तर विचार कर रहा था—वे महात्मा कौन थे ? वह मन्त्र क्या था ?



रहस्यलोक

साँझ की लाली धीरे-धीरे सुरमई होकर अन्धकार की कालिमा में परिवर्तित हो गई थी। गायें तो घर लौट आई थीं, लेकिन उनके साथ सुभग नहीं था। यह देखकर सेठ जिनदास को आश्चर्य और चिन्ता हुई। कुछ देर उन्होंने सुभग की प्रतीक्षा की, किन्तु जब बहुत देर हो चली और सुभग का कहीं पता न चला तो उनकी चिन्ता सीमा को पार कर गई।

सेठ जिनदास चम्पापुरी का 'नगरसेठ' था। उसकी समृद्धि और ऐश्वर्य का कोई पार नहीं था। जिस प्रकार वह अपार धन-सम्पत्ति का स्वामी था, उसी प्रकार वह धार्मिकता और नैतिकता में भी किसी व्यक्ति से कम नहीं था। उसके इन्हीं गुणों के कारण राज्य में उसका बड़ा सम्मान और प्रतिष्ठा थी।

यह सब होते हुए भी सेठ जिनदास के जीवन में एक अभाव था। अभाव यह था कि उसके कोई सन्तान नहीं थी; अर्हद्दासी नामकी उसकी अत्यन्त सुन्दर, गुणवती और पतिपरायणा पत्नी थी। उनका दाम्पत्य-जीवन सुखी और

आदर्श था, किन्तु पुत्र का अभाव एक अभिशाप के रूप में उन पर छाया हुआ था। यही कारण था कि उन्होंने उस ग्वाल-पुत्र सुभग पर, जो कि उनकी गायों की देखभाल किया करता था, अपना सारा सन्तान-प्रेम उड़ेल रखा था। वे उसी होनहार और गुणवान बालक को अपना पुत्र मानने लगे थे।

और यही कारण था कि जब उस सन्ध्या को गायें अकेली लौटीं और सुभग नहीं आया तो सेठ जिनदास के प्राण चिन्ता के कारण उसके कंठ तक आ गए। उसके मन में अनेक विचार उठने लगे—कहीं जंगल में वह बालक भटक तो नहीं गया? कहीं किसी वन्य पशु ने सुभग को अपना शिकार तो नहीं बना लिया? आखिर बालक अब तक लौटा क्यों नहीं?

इन्हीं चिन्ताओं में पड़े हुए जिनदास ने अपने अनेकों सेवकों को सुभग को खोज करके लाने का आदेश दिया। सेवक चिन्तित होकर जिनदास के प्रासाद से बालक की खोज के लिए निकल ही रहे थे कि सुभग बालक आ पहुँचा। उसे सुरक्षित लौट आया देखकर जिनदास और अर्हद्दासी की चिन्ता दूर हुई। शीघ्र उसे अपने पास बुलाकर जिनदास ने पूछा—

"अरे तू कहाँ रह गया था सुभग? इतनी देर कर दी आज तूने! गायें अकेली लौटी और तू अब तक नहीं आया

था तो हम तो चिन्ता के मारे मरे ही जा रहे थे। क्या हुआ था ? कैसे हुई इतनी देर ?"

इतने सारे प्रश्न एक साथ करते हुए सेठ जिनदास ने सुभग को अपनी छाती से लगा लिया था। धीरे-से उनके आलिंगन से अलग होकर सेठ के चरण छूते हुए सुभग ने उत्तर दिया—

"पिताजी ! आज मेरे आश्चर्य और आनन्द की सीमा नहीं है। मैं उस आनन्द में इतना विभोर हो गया था कि मुझे समय और स्थिति का कोई ज्ञान ही नहीं रहा........।"

जिनदास भी विस्मित और प्रसन्न होते हुए बोले—

"ओहो ! आज हमारे बेटे को ऐसी कौन-सी आनन्द की बात देखने को मिली ? जरा हम भी तो सुनें।"

तब सुभग ने बताया—

"पिताजी ! मैं उस आनन्द का वर्णन कर ही नहीं सकता। आज दोपहर को जब मैं विश्राम के लिए एक बड़े-से वृक्ष के नीचे गया तो मैंने वहाँ एक महात्मा को बैठे हुए देखा। वे महात्मा ध्यान में मग्न थे और उनके चेहरे से एक अलौकिक तेज प्रकट हो रहा था। मैं तो उन्हें देखकर विस्मय में डूब गया। थोड़ी देर बाद मैंने क्या देखा कि उन महात्मा ने अपनी आंखें खोलीं और एक मन्त्र पढ़ते हुए वे आकाश में उड़ गये। पिताजी ! यह कितने आश्चर्य की

बात है ? वे महात्मा कौन थे ? वे आकाश में कैसे उड़ गए·······?"

भोलाभाला बालक अपने आनन्द और विस्मय को इस प्रकार व्यक्त कर रहा था और प्रश्न कर रहा था, किन्तु इतना सुनकर जैसे जिनदास किसी और लोक में पहुँच गए थे। वस्तुतः वे बालक के सौभाग्य पर विचार कर रहे थे और उस विचार में डूब गए थे। कुछ देर में उन्होंने कहा—

"बेटा सुभग ! तू बड़ा भाग्यशाली है। तुझे आज एक ऐसे महात्मा के दर्शन करने का अवसर मिला है, जिनके दर्शन से जन्म-जन्म के पाप धुल जाते हैं। बड़ी तपस्या और पुण्य के बाद ही ऐसे महात्माओं के दर्शन होते हैं। मुझे तो तेरे से आज ईर्ष्या हो रही है। मैंने भी जीवनभर धर्म का पालन किया है, किन्तु मुझे आज तक ऐसे महान् और पुण्य-वान मुनिवर के दर्शन प्राप्त नहीं हो सके। तू सचमुच बड़ा ही पुण्यवान है।"

"लेकिन वे महात्मा कौन थे पिताजी ? वह मंत्र क्या था, जिसे पढ़ते हुए वे आकाश में उड़ गए ? वे आकाश में उड़ कैसे गए ?"

"बेटा ! वे आकाशगामी जैन मुनिवर थे। उन्होंने घोर तपस्या करके यह शक्ति प्राप्त की होगी। और वे अवश्य ही नवकार मंत्र का जाप करते हुए आकाश में उड़ गए होंगे। इस मंत्र में बड़ी अद्भुत शक्ति है, बेटा ! शुद्ध हृदय से इस

मंत्र का जाप करने से बड़े से बड़े संकट दूर हो जाते हैं और कितना भी कठिन कार्य हो, वह इस मंत्र की शक्ति से सिद्ध हो जाता है।"—जिनदास ने सुभग को बताया।

सुभग ध्यानपूर्वक जिनदास की बात को सुन रहा था। उसने कहा—

"पिताजी ! यदि ऐसी बात है तो आप मुझे भी वह मंत्र सिखाइये न ! मैं श्रद्धापूर्वक उस मंत्र का पाठ किया करूँगा।"

बालक की धर्मभावना से जिनदास को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—

"अवश्य बेटा ! तुझे मैं वह मंत्र अवश्य ही बताऊँगा। तू उसे याद कर लेना। बोल, मेरे साथ-साथ बोल—

णमो अरिहंताणं।
णमो सिद्धाणं।
णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं।
णमो लोए सव्वसाहूणं

सुभग ने जिनदास के साथ-साथ इस मंत्र का कई बार पाठ किया। धीरे-धीरे उसे यह मंत्र कंठस्थ हो गया। जिनदास ने इस मंत्र का अर्थ भी सुभग को अच्छी तरह से समझा दिया। पहले पद का अर्थ उन्होंने बताया—"

संसार में जिनका कोई शत्रु नहीं है, जो पूर्ण परिग्रह-रहित और वीतराग हैं, जो इन्द्रों के लिए भी पूज्य हैं, जिनसे इस सृष्टि का कोई भी रहस्य छिपा हुआ नहीं है—उन अरिहन्तों को नमस्कार करता हूँ।

दूसरे पद का अर्थ उन्होंने बताया—जिन्होंने अष्ट कर्मों को नष्ट कर दिया है, जिन्होंने ऐसी परम सिद्धि प्राप्त कर ली है, जहाँ से लौट कर फिर आना नहीं होता, अथवा जिनके सब कार्य सिद्ध हो चुके हैं, जिनके गुण और कार्य संसार के लिए मंगलरूप हैं, जिनके गुणों का स्मरण करने से भव्यजीव मुक्ति को प्राप्त करते हैं—ऐसे सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करता हूँ।

तीसरे पद का अर्थ उन्होंनें बताया—जो मर्यादा बाँधने वाले तथा मर्यादा का पालन करने वाले हैं, जो भव्य प्राणियों द्वारा मर्यादा-पूर्वक सेवित हैं, जो सूत्र का परमार्थ जानने और बताने के अधिकारी है, जो ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, और वीर्याचार में रमण करते हैं, जो चतुर्विध साधुसंघ के शिरोमणि हैं—ऐसे आचार्यों को नमस्कार करता हूँ।

चौथे पद पद का अर्थ उन्होंने बताया—जो स्वाध्याय तथा शास्त्र की शिक्षा देते हैं, जो सूत्रशिक्षा के लिए साक्षी दाता हैं, जिनके समीप कुपठन अथवा दुर्ध्यान नहीं है, योग्यता के कारण जो चतुर्विध संघ द्वारा 'उपाध्याय' के

पद से विभूषित हैं—ऐसे उपाध्यायों को नमस्कार करत
हूँ।

पाँचवें पद का अर्थ उन्होंने बताया— जो अपने ज्ञान की शक्ति से मोक्ष-साधन में लगे हुए हैं, जो ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करते हैं, जो सब प्राणियों को आत्मतुल्य मानकर सब पर समानरूप से करुणा करते हैं सबको कल्याण की भावना से सदुपदेश देते हैं—ऐसे इस लोक के समस्त साधुजनों को नमस्कार करता हूँ।"

नवकार मंत्र के इन पाँचों प्रमुख पदों का अर्थ भली प्रकार सुभग को समझाकर जिनदास ने कहा—

"इस मंत्र का फल क्या है यह बताने के लिए मंत्र के साथ ही यह कहा जाता है कि—

एसो पंच णमुक्कारो, सव्व पाव-प्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलं॥

अर्थात्-ये पाँचों नमस्कार सब पापों के नाशक हैं। इनसे सब प्रकार का मंगल होता है और यही प्रथम मंगल है।

इस प्रकार सेठ जिनदास ने सुभग को वह मंत्र तथा उसका अर्थ समझा दिया। किन्तु साथ ही उन्होंने उसे कहा—

"सुभग! तुम अभी बालक हो। अतः मैंने तुम्हें इस महामंत्र का सामान्य अर्थ ही अभी बताया है। यदि इतना ही तुम स्मरण रखोगे तो तुम्हारा कल्याण। होगा वैसे यह

मंत्र बड़ा गहन है। इसका वास्तविक मर्म तो धीरे-धीरे ज्ञान तथा सदाचार की साधना के साथ-साथ समझ में आता है। बड़े-बड़े ज्ञानी भी इस मंत्र के पूर्ण अर्थ तथा प्रभाव को कठिनाई से ही समझ पाते हैं। यह अपनी-अपनी योग्यता पर निर्भर करता है। ज्यों-ज्यों व्यक्ति अपना ज्ञान, संयम और आचार बढ़ाता जाता है, वह इस मंत्र के रहस्य-लोक में प्रवेश पाता जाता है। तुम होनहार हो बेटा ! तुममें प्रतिभा है, श्रद्धा है। श्रद्धापूर्वक इस मंत्र का स्मरण किया करो, तुम्हारा कल्याण होगा।"

सेठ जिनदास से यह सुनकर सुभग के हृदय में एक विचित्र प्रकार का आन्दोलन आरम्भ हो गया। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे सहसा वह प्रकाश के एक नए लोक में आ पहुँचा है। ज्ञान और प्रकाश से परिपूर्ण यह रहस्य-लोक उस बालक को बड़ा विस्मय-जनक तथा आकर्षक लगा।



परिवर्तन

था तो सुभग बालक ही, किन्तु था प्रतिभाशाली। काल-चक्र उसे चुपचाप एक निश्चित स्थान पर लिए चला जा रहा था। उस मन्त्र के ज्ञान ने उसके वैचारिक तथा भावनामय जीवन में एक बड़ा परिवतन ला दिया था। किन्तु कालचक्र को यहीं नहीं रुकना था। वह अपनी अबाध गति से घूम रहा था और न केवल सुभग के भावनामय जीवन में ही, बल्कि उसके दैहिक और सांसा-रिक जीवन में भी एक बड़ा परिवर्तन आने वाला था यह घटना इस प्रकार हुई—

सुभग अब पूर्णतया निर्भय हो चुका था। जंगल हो अथवा नगर, दिन हो या रात, वह अकेला हो या दुकेला, सुख आए या दुःख—सुभग को कोई भय नहीं था, कोई चिन्ता नहीं थी। उसके पास अब एक ऐसी शक्ति थी जो इन तमाम बाधाओं पर विजय पा सकती थी, और पाठक अब जानते हैं कि वह शक्ति क्या थी ?

और एक दिन उस परिवर्तन का क्षण भी उपस्थित हुआ, जो सुभग के जीवन को ही बदल देने वाला था।

काफी समय व्यतीत हो चुका था। एक बार सुभग जंगल में गायें चरा रहा था। आकाश के एक छोर से धीरे-धीरे कुछ बादल उमड़े। देखते ही देखते वे थोड़े-से बादल घन-घोर घटाओं में बदल गए। सारा आकाश काली-कजरारी घटाओं से घिर गया। आकाश और पृथ्वी को अपनी तीक्ष्ण कड़कड़ाहट से कंपाती हुई बिजली चमक उठी और फिर हजार हजार धारा के रूप में वर्षा होने लगी। वर्षा ऐसी हुई कि उसके थमने का कोई लक्षण ही नहीं दीख रहा था। सारी सृष्टि में जैसे केवल यही चीजें रह गईं—आँधी, बिजली और मूसलधार वर्षा।

कल्पना कीजिए—गहन वन। तूफानी आँधी, कड़कड़ाती हुई बिजली और मूसलाधार वर्षा, चारों ओर अन्धकार। प्रलय जैसी भयंकर स्थिति। और ऐसी विषम स्थिति में एक छोटा-सा बालक—अकेला।

ऐसी स्थिति में बड़े-बड़े साहसी व्यक्तियों का भी धीरज छूट जाना स्वाभाविक है। किन्तु पाठक विश्वास करें, हमारा चरित्रनायक बालक सुभग ऐसी विषम परि-स्थिति में भी निर्भय था। उसे अपने मन्त्र की शक्ति पर विश्वास और श्रद्धा थी। वह निरन्तर उस मन्त्र का जाप कर रहा था और निर्भय होकर समय की प्रतीक्षा कर रहा था।

धीरे-धीरे सन्ध्या होने पर, वर्षा कुछ धीमी हुई। तब सुभग ने अपनी गायों को इकट्ठा किया और वह घर की

ओर लौटा। मार्ग में एक नदी थी। वर्षा के कारण वह पहाड़ी नदी समुद्र की तरह उफन पड़ी थी। अब उसे पार करके जाना एक विकट समस्या थी। अन्धकार धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। गायें तो अपने बच्चों का स्मरण करती हुई नदी में उतर पड़ीं और किसी प्रकार उस पार पहुँच गईं, किन्तु सुभग क्या करे ? अन्त में उसने विचार किया कि यदि मैं घर नहीं पहुँचूंगा तो सेठ जिनदास अत्यन्त चिन्तित होंगे। इसके अतिरिक्त उसे नवकार मंत्र की शक्ति पर भी असीम विश्वास था। वह जानता था कि इस मन्त्र के प्रभाव से उसका अकल्याण हो ही नहीं सकता।

यह विचार करके सुभग नदी के किनारे के एक वृक्ष पर चढ़कर नवकार मन्त्र का पाठ करते हुए नदी में कूद पड़ा।

नदी में कूदने पर किसी चट्टान या वृक्ष से टकराकर सुभग मर गया। इस जीवन के अन्तिम क्षण तक सुभग नमस्कार महामन्त्र का जाप करता रहा था।

पाठक चकित होंगे कि यह क्या हुआ ? हमारा चरित्र नायक तो मर गया, अब कथा आगे कैसे चलेगी ? और यदि उस मन्त्र में शक्ति थी, उसका स्मरण बालक सुभग पूरी श्रद्धापूर्वक कर रहा था तो उसे मृत्यु के मुख में क्यों जाना पड़ा ? वह उस विपत्ति से पार क्यों नहीं हुआ ?

मन्त्र की शक्ति कहीं लुप्त नहीं हुई।—कथा भी आगे चलेगी। और हमारा चरित्रनायक भी अपने परिवर्तित रूप में उपस्थित होगा।

तथ्य यह है कि कालचक्र नियमित रूप से अपनी धुरी पर घूम रहा था। ठीक समय पर, एक भी क्षण इधर या उधर हुए बिना बालक सुभग को इस मृत्यु के माध्यम से एक नया जन्म ग्रहण करना था। उसका भावनामय जीवन परिवर्तित हो चुका था, किन्तु उसके दैहिक जीवन में भी एक परिवर्तन आना था, और वह आया।

इस परिवर्तन को ही हम जन्म या मृत्यु का नाम देते हैं। वस्तुतः जीवन अबाध और अखण्ड है। सुभग के पूर्व-कृत पुण्यकर्म उसे एक विशिष्ट जीवन और सिद्धि की ओर ले जा रहे थे।

नवकार महामन्त्र का स्मरण करते हुए सुभग ने यह शरीर त्याग दिया और उसके शुभ परिणामस्वरूप वह उसी रात्रि को जिनदास की पत्नी अर्हद्दासी के गर्भ में आया। उस समय अर्हद्दासी ने स्वप्न में एक फूला-फला कल्पवृक्ष देखा। इसी प्रकार के अनेक लक्षणों से जिनदास और अर्हद्दासी को यह विश्वास हो गया कि सुभग की मृत्यु हो गई है और वह अब अर्हद्दासी के गर्भ में आया है।

यह प्रसंग उन दोनों के लिए दुःख और आनन्द का एक मिश्रित प्रसंग था। बालक सुभग के स्मरण से उन्हें

दुःख था, लेकिन अब उसके उन्हीं के पुत्र के रूप में उत्पन्न होने के विश्वास से उन्हें आनन्द भी था।

दूसरे दिन सुभग के शव की अन्वेषणा की गई। उसे खोज कर सम्मानपूर्वक उसकी अन्त्येष्टि कर दी गई। सेठ जिनदास और अर्हद्दासी ने अन्त्येष्टि से पूर्व हसरतभरी निगाहों से सुभग के शव को देखा—उसके चेहरे पर एक आनन्द और शान्ति का भाव था और ऐसा प्रकट होता था जैसे बालक बोल रहा हो—'माँ ! मैं तुम्हारे पास आ रहा हूँ।'



विकास

अर्हंद्दासी का गर्भ धीरे-धीरे बढ़ने लगा। उसके गर्भ में पुण्यवान और धर्मात्मा सुभग का जीव आया था, अतः अर्हंद्दासी की इच्छाएँ भी वैसी होने लगी। गर्भ के बालक का जीव जिस स्वभाव का होता है, उसी के अनुसार गर्भवती माता की इच्छाएँ और कार्य भी होने लगते हैं। अर्हंद्दासी की इच्छाएँ धर्म और पुण्य के कार्य करने की होने लगी।

इस प्रकार धर्म-पुण्य के कार्य करती हुई अर्हंद्दासी बड़ी सावधानी से अपने गर्भ का रक्षण करने लगी। समय आने पर उसने एक सर्वांगसुन्दर बालक को जन्म दिया।

इस बालक का जन्म सेठ जिनदास और अर्हंद्दासी के जीवन में एक महान् आनन्द का अवसर था। उनकी वर्षों की साध पूरी हुई थी। उनका आनन्द इसलिए और भी शतगुना हो गया था; क्योंकि वह बालक वास्तव में सुभग ही था, अथवा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि वह सुभग का ही जीव था—दूसरे जन्म में। अतः जिनदास ने बड़ी धूमधाम से पुत्र-जन्मोत्सव मनाया। मुक्त हस्त से उसने दान दिया। राजा ने भी इस आनन्द के अवसर पर

अनेकों वन्दियों को मुक्त करके अपनी प्रसन्नता प्रकट की तथा सेठ जिनदास को वधाई दी।

एक पुण्यात्मा के जन्म से अनेकों पीड़ित व्यक्तियों को सुख प्राप्त हुआ।

सेठ जिनदास ने वालक के नामकरण के लिए वहुत से पंड़ितों से सलाह ली। पंड़ितों ने अनेक प्रकार से विचार करके तथा यह देखकर कि उस वालक का जन्म तथा दर्शन सवके लिए अत्यन्त आनन्दकारी हुआ है, उस वालक का नाम 'सुदर्शन' रखने को सम्मति प्रकट को। सेठ जिनदास ने पंड़ितों की सम्मति का आदर कदते हुए वालक का नाम सुदर्शन ही रखा।

अव वालक सुदर्शन धीरे-धीरे वड़ा होने लगा। जिनदास के वैभव का कोइ पार नहीं था। उसने वालक के लालन-पालन के लिए पाँच धायों तथा दासियों देश की दासियों को नियुक्त किया। इन धायों तथा अठारह में से प्रत्येक अपना-अपना विशिष्ट गुण रखती थी। वालक को आरम्भ से ही सव प्रकार से योग्य वनाने की दृष्टि से ही जिनदास ने ऐसी व्यवस्था की थी।

इस प्रकार समुचित संरक्षण में वालक का विकास होने लगा। धीरे-धीरे सुदर्शन आठ वर्ष का हो गया। तव जिन-दास ने उसके लिए विभिन्न कलाओं तथा विद्याओं के आचार्यों की व्यवस्था की। सुदर्शन पुण्यवान था। प्रतिभा वान था। उसके पूर्व जन्म के संस्कार उत्तम थे। अतः वह

बहुत थोड़े ही समय में ७२ कलाओं में निपुण हो गया। नम्र, सरल, शिक्षित और प्रतिभाशाली सुदर्शन को देखकर सेठ जिनदास के आनन्द की अब कोई सीमा न रही थी। उसने जी खोल कर कलाचार्यों को सम्मानित तथा पुरस्कृत किया।

सभी कलाओं में पारंगत सुदर्शन ने किशोरावस्था को पार करके यौवन में प्रवेश किया। युवक सुदर्शन की छवि देखते ही बनती थी। स्वस्थ, सबल और सुन्दर उसकी देह-यष्टी चमक रही थी तथा वैसा ही सुन्दर, नम्र तथा शुद्ध उसका मन भी था। युवावस्था एक प्रकार से मनुष्य के जीवन में परीक्षा का अवसर होती है। देखा जाता है कि अनेक युवक अपने यौवन के उन्माद में जीवन के शुभ पथ से भटक कर कुमार्ग पर चले जाते हैं। यौवनकाल में भी जो समर्थ व्यक्ति अपने मन को संयम में रखकर चलते हैं, वे ही इस संसार में धन्य हैं।

सुदर्शन अब युवक था। युवक ही नहीं, उसके पास उसके पिता की अपार सम्पत्ति तथा वैभव भी था। यदि मन असंयमी हो तो सम्पत्ति तथा वैभव तीव्रता से विष का कार्य करते हैं। यौवन तथा सम्पत्ति का संयोग बड़े-बड़े समर्थ व्यक्तियों को भी विचलित कर देता है। किन्तु सुदर्शन इसका अपवाद सिद्ध हुआ। उसका संयमी मन इस दुर्धर्ष संयोग में भी अडिग ही रहा। बल्कि बाल्यकाल में जो गुण उसमें प्रकट हो रहे थे, वे अब यौवनकाल में अधिक विकसित होकर प्रकट होने लगे।

सुदर्शन को युवक हुआ जान कर तथा सर्वगुणसम्पन्न देखकर चम्पानगरी में अनेक सम्पन्न तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति अपनी-अपनी कन्याओं का विवाह उसके साथ करने के लिए सेठ जिनदास के समीप आने लगे। सेठ जिनदास भी उचित अवसर देखकर सुदर्शन का विवाह करना चाहते थे, किन्तु उन्हें सुदर्शन के लिए उसी के योग्य, गुणवती, सुशील तथा सुन्दरी कन्या की तलाश थी। अन्त में मनोरमा नामकी एक कन्या उन्हें योग्य प्रतीत हुई और उसके पिता को उन्होंने उत्तर दिया—

"श्रेष्ठी ! आपकी कन्या बड़ी योग्य है। मुझे भी वह अत्यधिक प्रिय है। मैं सुदर्शन के समक्ष, आज ही यह प्रस्ताव रखूंगा और उसकी सम्मति जान कर आपको सूचना दूंगा।"

मनोरमा के पिता ने प्रसन्न होकर कहा—

"नगरसेठ ! आपके उत्तर से मुझे संतोष हुआ है। यह उचित ही है कि आप इस विषय में सुदर्शन की सम्मति ले लें। मैं आपके उत्तर की प्रतीक्षा करूँगा।"

मनोरमा के पिता अपने आवास को लौट गए। सेठ जिनदास ने पहले अपनी पत्नी अर्हद्दासी को अपना विचार बताया—

"अनेक लोग आए थे। किन्तु मुझे मनोरमा ही सुदर्शन के लिए उपयुक्त कन्या लगती है। तुम्हारा क्या विचार है ?"

"आपका निर्णय ठीक ही है आर्यपुत्र ! मैं उस कन्या को जानती हूँ। प्रत्येक दृष्टि से वह सुदर्शन की पत्नी बनने योग्य है।"—अर्हद्दासी ने अपनी सम्मति दी।

संध्या को सुदर्शन के सुसज्जित कक्ष में जिनदास के सेवक ने जा कर निवेदन किया—

"स्वामी ! महाश्रेष्ठि आपको स्मरण कर रहे हैं।"

"बहुत अच्छा। पिताजी को जा कर कहो कि मैं शीघ्र ही उपस्थित हो रहा हूँ।" सुदर्शन ने उत्तर दिया। सेवक प्रणाम करके चला गया।

सुदर्शन अपने पिता के कक्ष में पहुँचा। वहाँ उसकी माता भी उपस्थित थी। उसने माता-पिता के चरण छूते हुए कहा—

"देवतातुल्य पूज्य माता-पिता के चरणों में प्रणाम ! पिताजी ! आपने मुझे बुलाया था ?"

"हाँ बेटा ! आज तुमसे एक महत्व की बात हमें पूछनी है। तुमने हमारे यहाँ जन्म लेकर हमारे अन्धेरे घर को प्रकाशित किया है। हमारे सूने संसार को पुष्पित करके तुमने हमारे जीवन को सार्थक किया है। वत्स सुदर्शन ! अब तुम युवक हो गए हो। हमारी एक और अभिलाषा है, उसे पूर्ण करके तुम हमें अपने जीवन का सुफल दो।"

सुदर्शन चतुर था। वह कुछ समझा और कुछ संशय में भी रहा। उसने नम्रतापूर्वक कहा—

"पिताजी ! आपका वचन मेरे लिए अटल आज्ञा है। कहिए मेरे लिए क्या आदेश हैं ?"

"सुदर्शन! हम चाहते हैं कि इस घर में एक लक्ष्मी जैसी पुत्रवधू आए। तुम अब विवाह कर लो। हमने तुम्हारे लिए एक उपयुक्त वधू की खोज की है। केवल तुम्हारी सम्मति चाहिए। मनोरमा सर्वगुणसम्पन्न कन्या है…"

विवाह की बात सुनकर सुदर्शन स्वाभाविक रूप से माता-पिता के सामने कुछ लज्जित हुआ। उसने जिनदास की बात काटते हुए कहा—

"इतनी जल्दी क्या है, पिताजी ! अभी तो…"

"यह हमारे विचार करने की बात है, बेटा !" जिनदास ने भी सुदर्शन को बात पूरी नहीं करने दी, "तुम यह बताओ कि मनोरमा तुम्हें पसन्द है कि नहीं ? शेष बात तुम हम पर छोड़ दो। अथवा क्या कोई अन्य आपत्ति है तुम्हें ?"

"नहीं पिताजी ! आपत्ति क्या हो सकती है मुझे ? लेकिन…"

"लेकिन-वेकिन को छोड़ो। मनोरमा तुम्हें पसन्द है न ?'

मनोरमा के विषय में सुदर्शन बहुत कुछ सुन चुका था। उसने केवल यही उत्तर दिया—'जैसी आपकी आज्ञा' और वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

अपने पुत्र की विनम्रता तथा शील को देखकर सेठ जिनदास तथा अर्हद्दासी बड़े प्रसन्न हुए। और जब वह

विवाह की वात सुनकर लड़कियों की तरह लजाते हुए कक्ष से वाहर भाग गया तो पति-पत्नी आनन्द से मुक्त हास्य कर उठे। अर्हद्दासी ने चुटकी लेते हुए कहा—

"लो, वेटा राजी है तुम्हारा। अव करो विवाह की जल्दी से तैयारी।"

"हाँ हाँ, अव देर क्या है ? कल ही मनोरमा के पिता को वुलाकर यह शुभ सूचना उन्हें देता हूँ। और अव तुम भी तैयार हो जाओ अपनी चांद-सी वहू का मुंह देखने के लिए।"

एक वार फिर से सन्तुष्ट पति-पत्नी खिलखिला कर हँस पड़े।

× × ×

अभूतपूर्व धूमधाम के साथ सुदर्शन और मनोरमा का विवाह, सानन्द सम्पन्न हुआ। सारा नगर पति-पत्नी के इस योग्य युगल को देखकर प्रसन्न था। नगर के वयोवृद्ध पुरुषों के आशीर्वाद प्राप्त करके वह युगल प्रसन्नतापूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगा। मनोरमा सुदर्शन के ही समान सरल, विनम्र तथा धार्मिक विचार रखने वाली थी। अतः उन दोनों के जीवन में किसी भी प्रकार के क्लेश को कोई स्थान नहीं था। जिनदास तथा अर्हद्दासी भी अपने पुत्र तथा पुत्रवधू के इस सुखमय जीवन को देखकर परम सन्तुष्ट तथा प्रसन्न थे।

समय व्यतीत होता चला गया। सेठ जिनदास के घर में छोटे-छोटे पौत्र खेलने लगे। किसी समय जो विशाल

आवास सूना प्रतीत होता था, वह अब बालकों की मीठी, तोतली बोली और उनकी सरल सरस क्रीड़ाओं से भरापूरा हो गया।

तब एक दिन जिनदास ने अर्हद्दासी से कहा—

"प्रिये ! प्रभुकृपा से हमने जीवन के सब कुछ सुख देख लिए हमारी अवस्था भी अब बढ़ चली है। जीवन का बहुत थोड़ा समय शेष है। पुत्र और पुत्रवधू सब प्रकार से योग्य और सुखी हैं। अतः हमें अब अपना समय आत्मकल्याण में लगाना चाहिए।"

अर्हद्दासी ने उत्तर दिया—

"आप ठीक कहते हैं, आर्यपुत्र ! जीवन बरसाती नदी की तरह जा रहा है। हम लोग अब आखिर कब तक संसार व्यवहार में फंसे रहेंगे ? गृह-ससार का कार्यभार हमें अ पुत्र तथा पुत्रवधू को सोंप ही देना चाहिए।"

यह निश्चय करके जिनदास ने अपना सब कुछ-अपनी अपार सम्पदा, ऐश्वर्य, आवास इत्यादि सुदर्शन को सों दिया और वे स्वयं तथा अर्हद्दासी निश्चिन्त होकर धर्म ध्यान में लग गये।

जिनदास ने अपने नगरसेठ के पद से भी त्यागपत्र दे दि था। अतः राजा दधिवाहन तथा प्रजाजन यह विचार कर लगे कि अब वह पद किस योग्य पुरुप को सोंपा जाय। पू तरह विचार करने के बाद वे सभी इसी निर्णय पर पहुं

कि 'भूतपूर्व नगरसेठ के पुत्र सुदर्शन ही सर्वगुणसम्पन्न हैं, तथा इस गौरवपूर्ण पद के लिए वे ही सर्वाधिक उपयुक्त हैं। वे बुद्धिमान, व्यवहार-कुशल तथा सर्वप्रिय हैं, एवं पैतृक संस्कारों के कारण भी वे इस दायित्वपूर्ण पद का निर्वाह करने में समर्थ हैं।'

यह निर्णय हो जाने पर राजा दधिवाहन ने सम्मान-पूर्वक सुदर्शन को राजदरबार में निमंत्रित किया। विशिष्ट प्रजाजन के सन्मुख राजा ने सुदर्शन से कहा—

"सुदर्शन सेठ ! तुम्हारे पिता चम्पानगरी के नगरसेठ थे। उन्होंने अपने पद से अब त्यागपत्र दे दिया है और वे आत्मकल्याण में रत हो गए हैं। उनकी वर्षों की सेवाओं के लिए राजा और प्रजा उनकी आभारी रहेगी। किन्तु अब प्रश्न इस पद पर अन्य व्यक्ति को प्रतिष्ठित करने का है। हम सब लोगों ने इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है, और हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि अपने पिता के स्थान पर अब तुम्हीं इस पद के गौरव को वहन करने के योग्य हो। हमें आशा है कि तुम प्रजा के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने से इन्कार नहीं करोगे।"

सुदर्शन ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया—

"महाराज ! आपकी तथा प्रजा की आज्ञा मानना मेरा परम कर्तव्य है। किन्तु मैं इस पद के योग्य कहाँ हूँ ? अच्छा हो, यदि आप यह गौरव और भार किसी अन्य अधिक योग्य व्यक्ति को सौंपें।"

यह कहकर सुदर्शन ने तो अपनी विनम्रता तथा शालीनता बताई, किन्तु राजा तथा प्रजा के आग्रह के सम्मुख आखिर उसे झुकना ही पड़ा। विशिष्ट समारोह के साथ सारी प्रजा की साक्षी में सेठ सुदर्शन को चम्पानगरी के नगरसेठ की पदवी से विभूषित कर दिया गया।

× × ×

अपने विशाल आवास के हरे-भरे उद्यान में सुदर्शन घूम रहे थे। उनकी मुखमुद्रा कुछ चिन्ताग्रस्त थी। प्रतीत होता था कि वे किसी गहरे विचार में निमग्न हैं। अब वे केवल युवक सुदर्शन ही नहीं, नगरसेठ सुदर्शन थे। और यही उनकी चिन्ता का कारण था। वे विचार कर रहे थे—नगरसेठ के पद का दायित्व महान् है। नगरसेठ राजा तथा प्रजा के बीच का व्यक्ति होता है। उस पर राजा भी विश्वास करता और प्रजा भी। उसे राजा के हित का भी ध्यान रखना होता है तथा प्रजा के हित का भी। प्रजा के हित के साथ-साथ उसे राज्य-व्यवस्था की भी रक्षा करनी होती है। उसे यह प्रयत्न करना होता है कि प्रजा पर राजा की ओर से कोई अत्याचार न हो, तथा यह भी देखना होता है कि प्रजा किसी भी प्रकार से राज्यव्यवस्था को भंग न करे।

इतने उत्तरदायित्वपूर्ण पद का निर्वाह कैसे किया जाय, यही सुदर्शन सोच रहे थे। वे विचार कर रहे थे कि मैं अपनी असीम सम्पत्ति तथा पद का अधिक से अधिक सदुपयोग किस प्रकार करूँ ?

चिन्तन में उलझे हुए सुदर्शन ने एकाएक देखा—अशोक वृक्ष पर एक माधवी लता झूल रही है। वृक्ष से लिपटी उस लता में फूल खिले हैं और भ्रमर उन फूलों पर मंडरा रहे हैं। मधुमक्खियाँ मीठी गुनगुनाहट करती हुई फूलों का रस संचित कर रही हैं........

यह दृश्य देखकर सुदर्शन को अपनी समस्या का समाधान मिल गया। ये लताए भूमि से जल लेती है, इनका जीवन उसी पर निर्भर है। पृथ्वी के गर्भ से प्राप्त अपने जीवन को वे फूलों और फलों के रूप में प्रगट करती हैं। वृक्ष और लताएं अपने फलों और फूलों का फिर क्या करती है ? क्या वे अपने ही लिए उन्हें रख लेती हैं ? मधु तथा फलों का संचित कोष क्या वे स्वयं तक ही सीमित रखती हैं ?

नहीं, ये वृक्ष और लताएं अपना समस्त संचित कोष अन्य के उपयोग के लिए लुटा देती हैं। अन्य के उपकार में ही वे अपनी समस्त ऋद्धि की सार्थकता मानती हैं। तब........तब मनुष्य का क्या कर्तव्य है ?

नगरसेठ सुदर्शन ने विचार किया—मेरा क्या कर्तव्य है ?

समाधान उसे मिल चुका था। उसने निश्चय कर लिया कि वह अपनी सारी सम्पदा तथा अधिकार एवं शक्ति प्रजा के हित में व्यय कर देगा। तभी उसकी सम्पत्ति तथा शक्ति सार्थक होगी।

नगरसेठ सुदर्शन सम्पत्तिवान तथा शक्तिवान पुरुष था। उसने अपनी प्रतिभा से अपनी सम्पत्ति तथा शक्ति को और

भी बढ़ाया तथा ज्यों ज्यों वह बढ़ती गई, उनका उपयो
वह प्रजा के हित में करता चला गया। राजसत्ता के सहा
उसने प्रजा के व्यापार-व्यवसाय की इस प्रकार से उन्नति
तथा व्यवस्था की कि सारे राज्य में एक भी निरुद्यम
निष्क्रिय व्यक्ति न रहा। एक भी व्यक्ति राज्य में ऐस
न रहा जिसके पास कार्य न हो, जिसके पास जीविका क
साधन न हो।

राज्य की समस्त प्रजा में नगरसेठ सुदर्शन का जयजय
कार गूंज उठा।

इस प्रकार सुदर्शन सेठ सांसारिक और व्यावहारिक
कार्य पूर्ण कुशलता से करते हुए धर्मलाभ भी नियमितरू
से करते रहे। किसी भी क्षण वे आत्मकल्याण की साधन
को भूले नहीं।

सुदर्शन के वृद्ध माता-पिता भी समय आने पर इस नाश
वान देह का त्याग कर गए।

फला-फूला वृक्ष अपनी शरण में आने वाले प्रत्येक जीव
को शान्ति देता है। सुदर्शन भी अपनी शक्तिभर समस्त
प्रजा को सुख देने वाले सिद्ध हुए। व्यक्ति-व्यक्ति के मुख से
यही शब्द सुनाई पड़ते थे—सुदर्शन की जय हो ? नगरसेठ
जिनदास के सुपुत्र की जय हो ! !

नागिन ने फन उठाया

चम्पानगरी में ही एक ब्राह्मण रहता था। उसका नाम था कपिल। वह वेद-वेदांग, न्याय, दर्शन, व्याकरण, काव्य आदि का प्रकाण्ड विद्वान् था। इसके अतिरिक्त वह राज-पुरोहित भी था, अतः नगर में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी तथा सम्पत्ति की भी उसके पास कोई कमी नहीं थी। वह एक सज्जन पुरुष था। उसका आचार-विचार शुद्ध था। किसी व्यक्ति की उसने कभी कोई हानि नहीं की थी।

कपिल ब्राह्मण की पत्नी थी—कपिला। वह परम सुन्दरी थी। उसे अपने रूप का गर्व भी था और थी उसके हृदय में छिपी हुई वासना की एक अनबूझ अग्नि। कपिल और कपिला के स्वभाव में यहीं पर अन्तर था। सदाचारी ब्राह्मण की युवती पत्नी कपिला अपने यौवन और रूप में अंधी बनी हुई थी। भोग-विलास की आकांक्षा का एक लहराता हुआ समुद्र उसके हृदय में उफान भरता रहता था।

समान स्वभाव के होने के कारण कपिल और सुदर्शन में मैत्री थी। दोनों युवक थे, सदाचारी थे, विद्वान् थे, विचारशील थे। अतः उनका मैत्रीभाव स्वाभाविक ही था।

उस मैत्री में कहीं किसी स्वार्थ की भावना नहीं थी। वे शरीर और एक आत्मा थे। एक दूसरे का हितचिन्तन उनका कर्त्तव्य था। दैनिक कार्यों से अवकाश पा कर वे प्रति दिन एक दूसरे से मिलते और नाना प्रकार के विचार औ चर्चा में अपने समय का सदुपयोग किया करते थे। वस्तुत एक दूसरे से मिले बिना उन्हें चैन भी नहीं मिलता था

लेकिन कपिला के अन्त:करण में एक विषधर अपना फ धीरे-धीरे उठा रहा था। सुदर्शन के रूप और यौवन क देख-देख कर उसकी छाती जल रही थी। वह सोचती थी- आह! ऐसा सुन्दर पुरुष! ऐसा बलिष्ठ यौवन! वह स्त्री धन्य है, जिसे इस कामदेव के समान सुन्दर पुरुष का सहवास प्राप्त है। काश!·······किसी दिन मुझे भी इस पुरुष के सहवास का सुख प्राप्त होता!!

वासना का सर्प जब एक बार अपना फन उठा लेता है तो बिना डसे रहता नहीं। कपिला भी एक विवश सर्पिणी के समान भीतर ही भीतर ऐंठ रही थी और सुदर्शन को अपनी वासना की दाढ़ों में जकड़ लेने के लिए आतुर हो रही थी। अवसर की प्रतीक्षा में वह ठहरी हुई थी और ज्यों-ज्यों विलम्ब होता जाता था त्यों-त्यों उसका विष और भी भयंकर होता चला जा रहा था।

और अन्त में एक दिन उस भयंकर नागिन को अपने शिकार पर आक्रमण करने का अवसर मिल ही गया। एक दिन राजा ने कपिल को किसी राजकार्य से किसी अन्य ग्राम

में जाने का आदेश दिया। राजा की आज्ञा शिरोधार्य करके कपिल अपनी यात्रा की तैयारी करने घर पर आया उसने कपिला से कहा—

"कपिले ! राजा की आज्ञा से मैं वाहर जा रहा हूँ। जितनी जल्दी सम्भव होगा मै लौट आऊँगा। तुम सावधानी और शान्ति से रहना।"

सुनकर कपिला के मन में भीतर ही भीतर एक आनन्द की लहर दौड़ गई। उसे अव अवसर मिला था, जिसकी उसे कितने समय से प्रतीक्षा थी। किन्तु छल तो नारी का स्वभाव ही है, उसने दिखाने के आँसू आँखों में भरकर भोले ब्राह्मण से कहा—

"नाथ ! तुम कितने समय वाद आओगे ? मैं तुम्हारे वियोग में कैसे जीऊँगी ? मैं अकेली कैसे रहूँगी ?"

भोला ब्राह्मण जहरीली नागिन के भेद को क्या जाने ? वह गद्‌गद होकर वोला—

"तू तो बिल्कुल पगली है। मैं वहुत जल्दी ही लौट आऊँगा। और देख, सुदर्शन तो यहाँ है ही, वह तेरी देख-भाल करेगा। तुझे किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं होने देगा। कोई आवश्यकता आ पड़े तो उसे बुला भेजना। वह मेरा परम मित्र है, कोई संकोच नहीं करना।"

कपिला को और चाहिए भी क्या था ? वह तो मन ही मन सोच रही थी कि यह ब्राह्मण व्यर्थ ही विलम्ब क्यों कर

रहा है, शीघ्र चला क्यों नहीं जाता ? अपने झूठे आँसू पोंछकर उसने कहा—

"शीघ्र ही आना, प्रियतम ! मैं पलक-पांवड़े बिछाकर प्रतीक्षा करती रहूँगी।"

और फिर उसने ब्राह्मण की तैयारी बड़े उल्लसित मन से जल्दी-जल्दी कर दी।

भोले ब्राह्मण-देवता यात्रा पर चले गए।

× × ×

ब्राह्मण के चले जाने के पश्चात् कपिला ने तुरन्त अपना शृंगार आरम्भ कर दिया। खूब सज-संवर कर, आभूषणों और मूल्यवान वस्त्रों से अपनी सुन्दर देह को और भी सुन्दर बनाकर उसने अपने शयनागार को भी सुसज्जित किया। उसने निश्चय कर लिया था कि आज वह अवश्य ही सुदर्शन के साथ सहवास का सुख प्राप्त करेगी।

पापी व्यक्ति अपने मन में यह विचार करता है कि अन्य सभी व्यक्ति भी उसी के समान ही पापी होंगे।

सब प्रकार से प्रस्तुत होकर कपिला सुदर्शन सेठ के आवास की ओर चल पड़ी। सुदर्शन के सेवक ने जब अपने स्वामी को कपिला के आगमन की सूचना दी तो सुदर्शन को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह शीघ्र ही अपनी मित्र-पत्नी का स्वागत करने द्वार पर आया।

द्वार पर आकर उसने देखा कि कपिला की आंखों में आँसू भरे हुए हैं, उसका मुख उदास और चिन्तित है। उसने घबरा कर पूछा—

"क्या बात है भाभी ! आप यहाँ ? और इतनी घबराई
ं क्यों हैं ?"

रोते हुए कपिला ने उत्तर दिया—

'मैं आपको बुलाने आई हूँ। शीघ्र ही मेरे साथ घर
: चलिए.........."

सुदर्शन और भी घबराया। उसने पूछा—

"क्यों कुशल तो है भाभी ! आखिर हुआ क्या है ?"

अनिष्ट की आशंका से सुदर्शन का हृदय काँप उठा था।
पिला ने कहा—

"आप जल्दी चलिए। आपके मित्र के शरीर में भयंकर
दना हो रही है। अनेक उपचार किए, किन्तु फल नहीं
कला.........."

"ओह ! तो ऐसे समय में आप उनके पास से यहाँ
यों चली आई ? किसी सेवक को भेज देतीं, मैं तुरन्त चला
ाता" '..........अरे सेवक !' सुदर्शन ने जोर से पुकारा,
शीघ्र रथ तैयार करो।"

सुदर्शन को क्या मालूम था कि उसका मित्र तो उस
गर में ही नहीं है ! उसका हृदय निश्छल था, वह मित्र
ी अस्वस्थता से चिन्तित होकर अविलम्ब कपिला के साथ
ल पड़ा। मार्ग में उसने अपने मित्र की अस्वस्थता के
ाषय में कपिला से अनेक प्रश्न किए; किन्तु वह उन प्रश्नों
ा इधर-उधर का उत्तर देकर टालती रही। उसके हृदय

में तो एक ही बात बस रही थी—आज इस सुन्दर पुरुष के साथ सहवास का सुख अवश्य प्राप्त करूंगी।

घर पहुँचते ही सुदर्शन ने पूछा—

"कपिल कहाँ है ?"

"वे भीतर शयनागार में हैं। आइये।" कहकर कपिला शयनागार की ओर बढ़ी। सुदर्शन चुपचाप उसके पीछे-पीछे चला।

ज्यों ही वे दोनों शयनागार में पहुँचे, कपिला ने कक्ष का द्वार बन्द कर दिया। सुदर्शन को कुछ समझ में नहीं आया। वह चकित होकर सुसज्जित कक्ष को देख रहा था और अपने मित्र की खोज रहा था कि कपिला ने कहा—

"आइये देवता ! इस शय्या पर विराजिए।"

"लेकिन कपिल कहाँ है ?" सुदर्शन ने विस्मित होते हुए पूछा।

कुछ देर पूर्व जो नारी घबराई हुई और दुःखी दीख रही थी, वह अब बिल्कुल बदल गई थी। उसके वस्त्र अब अपनी देह पर से इधर-उधर सरकने लगे थे। उसके ओठों पर एक रहस्यमय मुस्कान खेल रही थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में एक विचित्र प्रकार का आनन्द लहरा रहा था। उसके सारे शरीर से एक तीव्र कामोत्तेजक छवि प्रकट हो रही थी।

उस मुसकान में कितना विष था ! उस दृष्टि में कितनी ज्वाला थी ! !

नागिन अपना फन उठा चुकी थी ।

सुदर्शन को भी अव कपिला के व्यवहार में किसी छल की गन्ध आ चुकी थी। उसने कुछ कठोर होते हुए कहा--

"मैं कुछ समझा नहीं। कपिल कहाँ है ?"

"अब कपिला ने सुदर्शन के निकट आते हुए कहा--

"आप जितने सुन्दर और वलिष्ठ हैं, उतने ही भोले भी प्रतीत होते है। आपके मित्र यहाँ नहीं हैं, वे यात्रा पर गए हैं। घर विलकुल सूना है, कोई भी नहीं है। मैं वहुत समय से इस अवसर की प्रतीक्षा में थी। सुदर्शन ! प्रिय ! मैं तुम्हारे विना अव जी नहीं सकती। मेरे हृदय में तुम्हारे प्रेम की अग्नि भभक रही है। उसे शान्त करो। सुदर्शन ! मैं तुम्हारे समक्ष सम्पूर्ण रूप से समर्पित हूँ। मुझे तुमसे प्रेम हो गया है, मेरे साथ इस यौवन के सुख को भोगो तथा मेरे और अपने जीवन को धन्य करो।"

तो यह रहस्य था, यह छल किया है इस विलासी नारी ने मेरे साथ। अपने पति को धोखा देकर, और मुझे भी छल से अपने चंगुल में लेकर यह अपनी वासना की तृप्ति करना चाहती है !--सुदर्शन ने समझा। विचारों का एक ववण्डर उसके मस्तिष्क में उमड़ आया। कपिला

सुन्दरी थी, अद्भुत सुन्दरी थी, इसमें सन्देह नहीं। वह युवती थी, और उसके साथ रमण करना किसी भी विलासी युवक के लिए एक सौभाग्य की बात हो हो सकती थी। किन्तु सुदर्शन तो विलासी और कामुक नहीं था। युवक वह था, सुन्दर भी था। किन्तु वह केवल देह से ही सुन्दर नहीं, मन और आत्मा से भी उतना ही सुन्दर था। चरित्र ही उसका वास्तविक सौन्दर्य था, वही उसके जीवन की निधि थी।

किन्तु अब वह करे क्या? किस प्रकार वह इस नारी के जाल से मुक्त हो? क्या वह उसे क्रोध से अपमानित करके और दुत्कार कर चला जाय? वह विचारने लगा। किन्तु उसे विचार आया—क्रोधित और अपमानित नारी घायल और अपमानित नागिन और शेरनी से भी अधिक भयंकर होती है। उस क्रोध की स्थिति में वह क्या नहीं कर सकती है।

सुदर्शन ने सोचा कि यदि सीधे-सीधे वह कपिला का तिरस्कार करके चला गया तो यह कपटी नारी न जाने किस तरह का व्यवहार करे। जाने वह किस तरह का तूफान खड़ा कर दे? जाने वह लोगों में किस तरह की बात फैलाए? वह यह भी कह सकती है कि सुदर्शन चरित्र-हीन है। उसने अपने मित्र की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर अपने मित्र के घर जाकर उसकी पत्नी का अपमान किया। उससे विलास करने की इच्छा की, प्रयत्न किया। उसने ऐसा किया, वैसा किया……

यदि ऐसा हुआ तो सुदर्शन निष्कारण ही लोक में बदनाम हो जायगा। पापी अपना पाप निरपराध व्यक्ति के सिर पर मढ़कर अपने आपको पवित्र प्रमाणित कर देगा और निरपराध व्यक्ति उसके क्रोध का शिकार हो जायेगा। वास्तविक बात किसे मालूम होगी ? कौन उसकी बात का विश्वास करेगा ?

नहीं, सुदर्शन ने निश्चय किया, इस तरह तो मुक्ति नहीं है। कोई अन्य उपाय ही काम में लिया जाना चाहिए। साँप भी न मरे और लाठी भी न टूटे।

अन्त में सुदर्शन को एक उपाय सूझा।

कपिला की ओर प्रेमभरी दृष्टि से देखता हुआ वह बोला—

"कपिला ! सचमुच आज मुझे बड़ा सुयोग प्राप्त हुआ है। तुम जैसी सुन्दरी और युवती नारी जिसे प्रेम करे, उससे बड़ा सौभाग्यशाली व्यक्ति और कौन हो सकता है ? तुम जैसी नारी को पाने के लिए तो लोग तरसते हैं और प्रयत्न करते हैं। किन्तु हाय ? मैं क्या करूँ ! मैं कुछ कह भी तो नहीं सकता ....?"

सुनकर कपिला को कुछ विस्मय हुआ। वह बोली—

"क्या बात है ? क्या तुम घबरा रहे हो ? डर किस बात का है ? ऐसे अवसर बारबार नहीं आते। शीघ्रता करो।"

"कपिला ! कैसे कहूँ ? बात भी ऐसी ही है। यद्यपि मैं भी सुन्दर हूँ और युवक हूँ, किन्तु मेरा यौवन तो उस पलाश के सुन्दर पुष्प के समान है, जिसमें गन्ध नहीं होती। वह केवल सुन्दर ही होता है, देखने मात्र के लिए ही। उसका उपयोग कुछ नहीं है। मेरा यौवन भी ऐसा ही है।"

अब कपिला को कुछ निराशा हुई। किन्तु उसने कहा—

"ऐसी क्या बात है ? आपका यौवन निरर्थक क्यों है ? आप ऐसे सुयोग का लाभ क्यों नहीं ले सकते ?"

सुदर्शन ने निराशा का नाटक करते हुए अपने चेहरे को उदास बनाते हुए कहा—

"कपिला ! वह कारण गुप्त है। किन्तु तुम्हें तो मैं वह बताऊँगा ही। क्या तुम प्रतिज्ञा करती हो कि यह रहस्य किसी पर प्रगट नहीं करोगी ? यदि तुम यह प्रतिज्ञा करो तो मैं यह बात तुम्हें बता सकता हूँ। साथ ही मैं भी तुम्हें वचन देता हूँ कि आज की यह बात किसी के सामने प्रगट नहीं करूँगा। बोलो, तुम क्या कहती हो ?"

कपिला तो आतुर हो रही थी। वह सुदर्शन के साथ भोग करने में एक क्षण का भी विलम्ब नहीं चाहती थी। इसके साथ ही वह स्वयं भी यह चाहती थी कि यह

सारी बात किसी पर प्रकट न हो। अतः उसने शीघ्रता से कहा—

"मैं प्रतिज्ञा करती हूँ, आप मुझे शीघ्र ही सारी बात बताइये। सम्भव है, मैं कोई उपाय खोज सकूं?"

"यदि तुम कोई उपाय खोज सको तो कहना ही क्या है? मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रहेगी। किन्तु मुझे आशा नहीं है। जिस प्रकार एक रोगी और असमर्थ व्यक्ति अपने सामने षट्रस भोज़न होते हुए भी उसका उपभोग नहीं कर सकता, वैसी ही स्थिति मेरी है……कपिला! देखो तुमने प्रतिज्ञा की हैं, किसी से कहना नहीं, मैं…… मैं पुरुषत्वहीन हूँ।"

सुनते ही कपिला पर जैसे बिजली गिर पड़ी। उसकी सारी आशाओं पर तुषारपात हो गया। कैसी लालसा से वह सुदर्शन को लेकर आई थी! कितने समय से वह उस पर मोहित थी और उसके साथ सम्भोग-सुख प्राप्त करने की इच्छुक थी! किन्तु अब जब उसे मालूम हुआ कि वह नपुंसक है, तब उसकी निराशा और क्रोध की कोई सीमा न रही। सुदर्शन के प्रति उसे जितना प्रेम था, उतनी ही घृणा अब उसे उसके प्रति हो आई।

युवती स्त्री, जो भोग-विलास की इच्छुक हो, वह जितनी घृणा एक पुरुषत्वहीन व्यक्ति से करती है, उतनी संसार में किसी वस्तु से नहीं करती।

अपनी घोर निराशा, क्रोध और घृणा में कपिला ने सुदर्शन की बात समाप्त होते ही कहा—

"अभागे, नपुंसक ! जा निकल जा, यहाँ से.......

अन्धे को क्या चाहिए ?

केवल दो आँखें।

और सुदर्शन को क्या चाहिए था ?

सुदर्शन को जो चाहिए था, वह यही तो था। क्षणभर का भी विलम्ब किए बगैर वह मुँह लटकाए हुए कपिला के घर से निकल गया और परमात्मा को स्मरण करता हुआ अपने घर की ओर भाग छूटा।

एक जहरीली नागिन के फन्दे से आज सुदर्शन बच गया था। वह आज तो उससे बच गया, किन्तु क्या नागिन शान्त बैठ सकी ?

दो सहेलियाँ

चम्पानगरी में आज इन्द्रोत्सव मनाया जा रहा था। प्रातःकाल से ही सारे नगर में धूमधाम आरम्भ हो गई थी। नगर के सारे नागरिक उत्साहपूर्वक इस उत्सव में सम्मिलित होकर जीवन का आनन्द लेने की तैयारियाँ कर रहे थे। स्त्रियाँ आज अपने शृंगार की चरम सीमा पर पहुंच जाना चाहती थीं। बालकों के उल्लास का कोई अन्त नहीं था और युवक अपनी मस्ती में डूब रहे थे।

यह इन्द्रोत्सव नगर से बाहर विशाल और सुन्दर उद्यान में मनाया जाता था। राजा तथा प्रजा दोनों मिल कर इस दिन अत्यन्त उत्साह से राग-रंग करते थे। राजा दधिवाहन ने एक दिन पूर्व ही घोषणा करके नागरिकों को उत्सव में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दे दिया था।

उत्सव-स्थल पर भीड़ समाती ही न थी। एक ओर राजा का शामियाना लगा था, जहाँ पर अनेकों सेवक-सेविकाएं, सैनिक, और दरबारी अपने-अपने योग्य

वस्त्रों में सुशोभित इधर-उधर आते जाते दिखाई पड़ते थे। दूसरी ओर, राजा के शामियाने के समीप ही महारानी अभया का विशाल शामियाना था। उस शामियाने के भीतर की शोभा वही व्यक्ति देख सकता था, जिसने पूर्व-जन्म में अनेक सत्कर्म किए हो। अनेकों सुन्दरी सेविकाओं तथा नागरिकों से घिरी हुई महारानी आज इस प्रकार शोभित होती थीं, जैसे देवियों और अप्सराओं से घिरी हुई इन्द्राणी।

नगर-पुरुषों तथा स्त्रियों के बैठने के लिए भी समुचित और अलग-अलग व्यवस्था की गई थी।

धीरे-धीरे सारा नगर उत्सव-स्थल पर पहुँच गया। आनन्द का एक सागर ही जैसे इन पुरुष-स्त्रियों के रूप में मूर्त होकर लहरा उठा।

महारानी अभया की सभी सहेलियां जब एकत्रित हो गई तब उसने प्रस्ताव रखा—

"कपिला! चलो हम कुछ देर कहीं घूम आएं।"

रानी का प्रस्ताव तो आदेश का ही रूप होता है। तुरन्त रथ तैयार किए गए और उनमें रानी की सहेलियां बैठकर घूमने के लिए चल दीं। कपिला रानी के रथ में उसके साथ बैठी थीं।

रानी अभया के सुसज्जित रथ के पीछे-पीछे ही जो रथ आ रहा था, उसमें कौन था?

उस रथ में अपने पाँच पुत्रों के साथ बैठी थी—हमारे चरित्रनायक सुदर्शन की पत्नी—मनोरमा।

कपिला ने पीछे मुड़कर मनोरमा को देखा।

ऐसा लगा जैसे किसी नागिन ने अपने शत्रु को अपनी विषभरी दृष्टि से घूरा हो !

पाठक भूले न होंगे, कपिला की वासना अतृप्त ही रह गई थी। सुदर्शन उसे सन्तुष्ट न कर सका था। वह शूल उसके हृदय में आज तक चुभा हुआ था और अपना विष उसके सारे शरीर में फैला रहा था।

आज नागिन ने अपने शत्रु पर प्रहार करने का एक अच्छा अवसर पाया।

कपिला ने रानी अभया से पूछा—

"महारानी ! यह हमारे रथ के पीछे किसका रथ है ? यह अत्यन्त सुन्दर स्त्री कौन है ?"

"बड़ी भोली बनती है। इसे भी तू नहीं जानती ?" रानी ने कहा।

"नहीं।"

"हूँ, बड़ी कमजोर है तेरी स्मरणशक्ति, क्यों ? अनेक बार तू इससे मिल चुकी है, फिर भी भूल गई ?" कहकर अपने ओठों पर एक हल्का-सा व्यंग ला कर अभया ने कहा—"कोई सुन्दर पुरुष होता तो तेरी आँखों में ऐसा बस जाता कि जनम जनम तक उसे नहीं भूलती।"

एक पापी व्यक्ति दूसरे पापी को पहिचानने में देर नहीं करता। अभया भी कपिला को खूब पहिचानती थी। और अभया क्या थी, यह हम अपने पाठकों को बताने जा ही रहे हैं।

कपिला ने अभया के व्यंग को समझा, किन्तु टालते हुए कहा—

"सचमुच अभया! मैं इसे नहीं जानती। कौन है वह?"

"यह नगरसेठ सुदर्शन की पत्नी मनोरमा है।"

"अच्छा! ईश्वर ने जोड़ी तो अच्छी मिलाई है। सौन्दर्य और यौवन में कोई किसी से कम नहीं है। और ये चार बालक किसके हैं?"

"बड़ी अजीब औरत है तू! ये बालक इन्हीं के हैं।"

"ओ हो! ये नगरसेठ के बालक हैं! खूब! संसार में आश्चर्यों की कमी नहीं है।"—कहकर कपिला एक भयंकर और कुटिल हंसी हंस पड़ी।

रानी को कपिला की इस बात पर और इस तरह हंसने के ढंग से आश्चर्य हुआ। उसने कुछ न समझकर पूछा—

"आखिर बात क्या है कपिला! तेरी हंसी का कारण?"

"कुछ नहीं, हंसी के लिए क्या कारण? यूं ही हंस पड़ी थी।"

"झूठी कहीं की। सच सच बता। मुझसे कपट नहीं चलेगा।"

"नहीं महारानीजी ! आपसे कपट कैसे करूँगी। किन्तु प्रत्येक बात के लिए एक अवसर होता है। इस अवसर को मैंने उपयुक्त नहीं समझा।"

रानी का कौतूहल बढ़ता जा रहा था। कपिला यही तो कर रही थी। वह अपने विषबुझे तीर को ठीक समय पर, ठीक स्थान पर छोड़ना चाहती थी। रानी ने आतुर होकर पूछा—

"जो कुछ भी हो, तू मुझे इसी समय सारी बात बता, आखिर मामला क्या है ?"

"तब कपिला ने कहा—

"आप नहीं मानतीं तो बताती हूँ, किन्तु किसी से कहिएगा नहीं। सुदर्शन तो नपुंसक है नपुंसक के पुत्र कैसे? और यह देवी जी चार पुत्रों को लेकर सती-साध्वी बनी बैठी हैं। मुझे इसी बात पर हंसी आई थी।"

कपिला की बात सुनकर अभया रानी क्षण भर के लिए तो आश्चर्य में डूब कर अवाक रह गई। उन्हें ठीक से समझ ही नहीं पड़ा कि कपिला क्या कह रही है और जो कुछ कह रही है, उसका अर्थ क्या है। धीरे-धीरे उस कथन का अर्थ उन्हें समझ में आया और वे कुछ क्रोधित-सी हो कर बोलीं—

"तू झूठ बोलती है कपिला ! तुझे शर्म आनी चाहिए। किसी भी भली स्त्री के लिए ऐसी कठोर और अपमान-जनक बात कहना शोभा नहीं देता। हँसी-मजाक में भी ऐसी बात नहीं कहना चाहिए। सुदर्शन को सारी राजधानी जानती है, उनका आदर करती है। इसी प्रकार सुदर्शन की पत्नी मनोरमा के चरित्र को भी कौन नहीं जानता आखिर तुझे इस तरह की बात कहने का विचार आय कैसे ?"

रानी ने बात कठोरता से कही थी, और यदि कोई अन्य स्त्री होती तो महारानी के ऐसे कथन से कांप उठती। किन्तु कपिला तो मंजी हुई स्त्री थी, और उसके साथ ही वह रानी के चरित्र को भी उसकी सहेली होने के नाते अच्छी तरह जानती थी थी। अतः वह जरा भी विचलित नहीं हुई और उसने उसी प्रकार हँसते हुए उत्तर दिया--

"महारानीजी ! आपके साथ यही तो कठिनाई है। आपको कोई बात न बताई जाए तो मुश्किल और बताई जाय तो भी मुश्किल। चित भी आपकी और पट भी आपकी। अब कोई करे तो क्या करे ?"

"अच्छा ! ऐसा ही है तो बता, तुझे कैसे मालूम हुआ कि सुदर्शन नपुंसक है ?"

"सुदर्शन की नपुंसकता की बात स्वयं सुदर्शन से अधिक और कौन जान सकता है, महारानी ! और यह

वात मुझे स्वयं सुदर्शन ने ही कही है। किसी अन्य व्यक्ति ने यदि यह वात मुझे कही होती तो मैं भी आपकी तरह उस वात पर विश्वास नहीं करती।"

महारानी अभया फिर से विचार में पड़ गई। कुछ देर चुपचाप विचार करने के बाद वे इस निर्णय पर पहुँची कि अवश्य ही इस पुरुषकामी स्त्री ने सुदर्शन को कभी अपने जाल में फँसाने की कोशिश की है और सुदर्शन चतुराई से इसके जाल से निकल गया है। यही कारण है कि आज यह अपने अपमान का वदला लेने के लिए सुदर्शन के लिए ऐसी वात कह रही है।

प्रगट में रानी ने कपिला से कहा—

"कपिला ! मैं वात समझ गई हूँ। तूने धोखा खाया है। इन बच्चों को देखकर एक मूर्ख व्यक्ति भी यह कह सकता है कि ये वालक सुदर्शन के अतिरिक्त अन्य किसी के नहीं हो सकते। इनकी आकृति का सम्पूर्ण अंश सुदर्शन से मिलता है। इसके अतिरिक्त इस मनोरमा को देखकर भी कोई भी व्यक्ति सहज ही कह सकता है कि यह स्त्री दुराचारिणी नहीं है। परपुरुषगामिनी स्त्री की आँखें छिपी नहीं रहतीं, कपिला ! तू देखती नहीं, जब से सेठानी अपने साथ है, एक क्षण के लिए भी उसकी आँखें ऊपर नहीं उठीं। तेरी तरह वह आँखें नचा-नचा कर इधर-उधर सुन्दर पुरुषों की खोज नहीं करती फिरती, समझी ?"

दोनों एक दूसरे को समझतीं थीं। लेकिन महारानी की बात कपिला को सगत लगी और वह विचार करने लगी कि क्या वास्तव में सुदर्शन अपने चरित्र की रक्षा के लिए मुझे धोखा देकर बच गया?

वह विचार कर ही रही थी कि रानी ने फिर उससे पूछा—

"अच्छा! तुझे सुदर्शन ने स्वयं यदि अपनी नपुंसकता की बात कही है, तो उसकी आवश्यकता क्या आ पड़ी? क्यों तूने पूछा और क्यों उसने तुझे बताया, जरा सुनूँ?"

कपिला अब पकड़ी गई। रानी के शब्दों में स्पष्ट व्यंग था। उसने हिचकिचाते हुए उत्तर दिया—

"असल में……मुझे उसने नहीं कहा। वह अपनी नपुंसकता की बात मेरे पति को बता रहा था, तब मैंने यह बात सुन ली थी।"

"हूँ! दाई से पेट छिपा रही हो? अभी कहती थी कि मुझसे कहा था और अब कहती हो कि मेरे पति से कहा था। कपिला तू झूठ बोल रही है। सच-सच बोल, क्या बात है?"

अब कपिला के लिए कोई मार्ग नहीं बचा था। अवश्य ही उसने सुदर्शन से प्रतिज्ञा की थी कि वह यह बात किसी से कहेगी नहीं, किन्तु उस प्रतिज्ञा को तो वह तोड़ ही चुकी थी। इसके अतिरिक्त रानी और वह एक दूसरे को

अच्छी तरह पहचानती थीं। दोनों की गुप्त बातें दोनों जानती थीं। अतः कपिला ने अन्त में सारी घटना रानी को ज्यों की त्यों सुना दी।

रानी ने जब उस घटना को सुना, तब उसका रहा सहा सन्देह भी दूर हो गया। उसे निश्चय हो गया कि सुदर्शन ने कपट-जाल से मुक्त होने के लिए ही अपनी नपुंसकता की झूठी बात उसे कह दी थी। इसके अतिरिक्त उस चरित्रवान पुरुष के पास और मार्ग ही नहीं था। कपिला से उसने कहा—

"देवीजी! अब आप समझी होंगी कि सुदर्शन पुरुषत्व-हीन नहीं है। वह आपके चगुल से बचना चाहता था और बच गया।"

"हूँ! लगता तो मुझे भी ऐसा ही है। किन्तु तब तो सुदर्शन धन्य है। यदि वह मेरे जाल से भी साफ और बेदाग निकल गया है तो मैं विश्वासपूर्वक कहती हूँ कि ससार की कोई स्त्री उसे पथभ्रष्ट नहीं कर सकती।"

रानी अभया के लिए कपिला का कथन एक चुनौती था। भीतर ही भीतर वह भी सुदर्शन के प्रति आसक्त थी, और अब उसे कपिला ने चुनौती भी दे दी थी। उसने तुरन्त कहा—

"रहने दे कपिला! अधिक अहकार अच्छा नहीं। संसार में एक तू ही सुन्दर स्त्री नहीं है। और यह भी मत

समझ कि त्रियाचारित्र को तेरे अलावा और कोई नहीं जानता। अभी तू थोड़ी शिक्षा ले। इस त्रियाचरित्र के आगे सुदर्शन तो क्या, बड़े बड़े ऋषि-मुनि भी डोल गए हैं।"

"अर्थात् अब महारानीजी स्वयं अपना जाल फैलाएगी। ठीक है, हम भी देख लेंगे कि आप कितनी निपुण हैं। कपिला के जाल से छूटा हुआ शिकार रानी अभया के जाल में फंस गया तो कपिला सदा के लिए अभया की दासी हो जायगी।"

"देख लेना। प्रतिज्ञा करती हूं कि एक वर्ष के भीतर सुदर्शन को अपनी ओर आसक्त कर लूंगी और उसके चरित्र को खण्डित करके बता दूँगी। यदि मैं ऐसा नहीं कर सकी तो अपने प्राण त्याग दूँगी।"

वह उत्सव रानी की इस भीषण प्रतिज्ञा के साथ समाप्त हुआ।

षड्यन्त्र

महल में पहुँचकर महारानी चिन्ता में निमग्न हो गई। प्रतिज्ञा तो वह कर चुकी थी, किन्तु वह प्रतिज्ञा पूर्ण कैसे हो ? सुदर्शन कोई साधारण पुरुष नहीं था। उसे अपनी ओर आकृष्ट कर लेना महारानी के लिए एक विषम समस्या ही थी।

किन्तु महारानी को कुछ अपने सौन्दर्य का गर्व था, कुछ अपनी चतुराई का विश्वास था, कुछ राज्य की स्वामिनी होने का अहंकार था, और इन सबसे बढ़कर उसे जिसका भरोसा था, वह थी उसकी धाय पंडिता।

पंडिता वास्तव में छल-प्रपंच करने में यथा नाम तथा गुण ही थी। वह इस विषय की पंडिता ही थी। रानी उसे अपने पिता के घर से ही साथ लाई थी। बाल्यकाल से ही पंडिता ने रानी को पाल-पोसकर बड़ा किया था। अतः रानी उसका पूर्ण विश्वास करती थी। सब तरह की गुप्त बातें वह अपनी उस धाय को बताया करती थी। और पंडिता ही थी, जो रानी को इस कार्य में पूरी मदद करती थी।

अस्तु, रानी ने पंडिता को बुलाकर उस दिन की सारी घटना सुनाई और अपनी प्रतिज्ञा को बात बताकर कहा-

"पंडिता ! यह मेरे जीवन-मरण का प्रश्न है। जैसे भी हो, सुदर्शन को तू मेरे पास ला। तेरे अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति यह दुष्कर कार्य नहीं कर सकता।"

पंडिता ने ध्यान से रानी की बात सुनी और उत्तर दिया-

"तुम निश्चिन्त रहो, रानी ! बड़ी आसानी से मैं सुदर्शन को तुम्हारे पास ला दूंगी। मेरा इतना ही काम रहेगा। उसके बाद तो तुम उसे अपनी ओर आकृष्ट कर लोगी न ?"

"अवश्य ! तुम एक बार किसी प्रकार उसे मेरे पास ला दो, फिर तो मैं सौन्दर्य, अधिकार और छल-बल से उसे अपने वश में कर ही लूंगी। लेकिन, पंडिता ! सुदर्शन सामान्य पुरुष नहीं है। उसे यहाँ लाने में तुझे अपनी सारी बुद्धि और शक्ति लगा देनी पड़ेगी। मैं सोच नहीं पाती कि आखिर तू उसे मेरे महल में लाएगी कैसे ?"

उत्तर में पंडिता रानी के बिल्कुल समीप खिसक आई और फुसफुसा कर रानी के कान में उसने कोई बात कही। रानी का चेहरा उसकी बात सुनकर कुछ खिल गया।

यह पंडिता के षड्यन्त्र का आरम्भ था।

× × ×

महारानी के महल में हलचल मची हुई थी। दासियाँ चिन्ता में डूबी हुई इधर से उधर भाग दौड़ रही थीं। किसी को कुछ सूझ नहीं रहा था कि वह क्या करे ! महा-

रानी अभया की तबियत एकाएक बिगड़ गई थी। किसी भी उपचार से वे स्वस्थ नहीं हो रही थी। राजवैद्य हैरान थे। उन्हें महारानी का रोग समझ में ही नहीं आ रहा था, उपचार करते तो क्या करते ? रानी चिल्ला रही थी, उन्होंने अपने आभूषण तथा वस्त्र उतार कर फेंक दिए थे। कभी वे थर-थर काँपने लगती थी। चिन्ता सबको हो रही थी, किन्तु उपचार किसी को कोई सूझ नहीं रहा था।

कुछ दासियाँ दौड़ी-दौड़ी महाराजा दधिवाहन की सेवा में उपस्थित हुई और निवेदन किया—

"महाराज ! शीघ्र पधारिये। महारानी अभया की स्थिति गम्भीर है। न जाने उन्हें क्या हो गया है ? राजवैद्य हैरान हैं। क्षणभर का भी विलम्ब न करें महाराज !"

महाराजा तुरन्त महारानी के महल में पहुंचे। आ कर उन्होंने रानी की स्थिति को देखा और जानने का प्रयत्न किया कि उन्हें क्या पीड़ा है। किन्तु उत्तर में रानी और भी अधिक जोर से चीखने-चिल्लाने और कांपने लगी। महाराजा भी चिन्तित हो गए। राजवैद्य की तरफ उन्होंने प्रश्नभरी निगाहों से देखा, किन्तु राजवैद्य उत्तर में केवल नीची दृष्टि करके मौन रह गए।

उपयुक्त अवसर देख कर पण्डिता ने महाराज से कहा—

"महाराज ! आज्ञा हो तो सेविका कुछ निवेदन करना चाहती है।"

"हाँ हाँ, पण्डिता ! कहो, तुम तो महारानी के साथ हमेशा रहती हो। क्या तुम महारानी की अस्वस्थता के बारे में कुछ बता सकती हो ?"

महाराजा की आज्ञा पाकर पण्डिता ने कहा—

"महाराज ! मेरी समझ से महारानी की अस्वस्थता का एक ही कारण हो सकता है। वह यह, कि जब आप युद्ध के लिए गए थे, तब पतिव्रता महारानी ने आपकी कुशलक्षेम के लिए अनेक प्रकार से पूजा-पाठ किया था तथा कामदेव की ऐसी मनौती भी की थी कि हे कामदेव ! जब महाराजा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके कुशलपूर्वक लौट आएंगे, तब मैं आपकी विधिपूर्वक पूजा करूंगी तथा उससे पूर्व एक पतिव्रता स्त्री की भाँति अपने महल से बाहर कदम नहीं रखूंगी। किन्तु जब आप पधारे, तब आपसे मिलने की प्रसन्नता में वह अपनी प्रतिज्ञा को भूल गई। मेरी तुच्छ बुद्धि में यह आता है कि महारानी पर इस कारण से देव का प्रकोप हुआ है।"

"हूँ, यही कारण हो सकता है। महारानी ने भूल की। किन्तु अब इसका उपाय क्या है ?"—महाराजा ने पूछा।

"महाराज ! मेरे विचार से आप देव की पूजा का भार

अपने ऊपर लेकर पूजा कीजिए। देव तुष्टमन होंगे और महारानी स्वस्थ हो जाएँगी।"

"ठीक है। किन्तु पूजा किस प्रकार करनी होगी ?"

"महाराज ! आप शुद्ध जल से स्नान करके देव से प्रार्थना कीजिए कि वे महारानी को स्वस्थ कर दें। देव को आप वचन दीजिए कि आप विधिपूर्वक उनका पूजन करेंगे। तथा स्वस्थ हो जाने पर स्वयं महारानी भी उत्साहपूर्वक आपका पूजन करेंगी तथा पूजन पूर्ण हो जाने पर ही अब अपने महल से बाहर निकलेंगी।'

पण्डिता की सलाह के अनुसार राजा दधिवाहन ने देव से प्रार्थना की। प्रार्थना पूर्ण हो जाने पर पण्डिता ने पूर्व-निश्चित संकेत के अनुसार रानी अभया के शरीर का स्पर्श किया और देव को सम्बोधित करके कहा--

"हे देव ! आप महाराजा की प्रार्थना स्वीकार करके महारानी पर से अपना प्रकोप हटा लीजिए। महारानी से भूल हो गई, किन्तु आप उन्हें क्षमा करें। स्वस्थ हो जाने पर वे विधिपूर्वक आपकी पूजा करेंगी और पूजा समाप्त न होने तक वे महल से बाहर नहीं निकलेंगी।"

षड्यन्त्र का चक्र अब घूमने लगा था। पण्डिता की बात समाप्त होते ही महारानी उठकर बैठ गईं। पण्डिता ने कहा—

"देखिए महाराज ! मैंने ठीक कहा था न ! महारानी पर देव का ही प्रकोप हुआ था । अब आप कोषाध्यक्ष तथा अन्य राजकर्मचारियों को आवश्यक आदेश दे दीजिए कि महारानी कामदेव की पूजा करेंगी । उसके लिए आवश्यक धन तथा अन्य सुविधाएँ महारानी को इनकी इच्छा के अनुसार प्राप्त होती रहें । द्वारपालों को भी आदेश कर दें कि उत्सव के कारण बार-बार होने वाले आवागमन में किसी प्रकार की बाधा न डालें ।"

रानी के स्वस्थ हो जाने से राजा बड़े प्रसन्न थे। उन्होंने पण्डिता की समझदारी की प्रशंसा करते हुए उसके कहने के अनुसार आवश्यक आज्ञाएं कर्मचारियों को दे दीं।

धीरे-धीरे महारानी के कक्ष में एकान्त हो गया । उनके अतिरिक्त अब वहाँ केवल एक ही व्यक्ति बचा था—प्रपंच पण्डिता 'पण्डिता' ।



रानी या राक्षसी ?

कार्तिक मास की पूर्णिमा। चम्पापुरी में इस दिन बड़ी धूमधाम से कौमुदी-महोत्सव मनाया जाता था। उत्सव मुख्य रूप से स्त्रियों का था। राजधानी के सारे पुरुष उस दिन नगर से बाहर चले जाते थे और स्त्रियाँ स्वतन्त्रता पूर्वक आनन्द-क्रीड़ा करती थीं।

कौमुदी-महोत्सव से कुछ दिन पूर्व से ही पंडिता ने कामदेव की पूजा आरम्भ कर दी थी। उसके लिए उसने लिए उसने कामदेव की एक सुन्दर मूर्ति बनवाई थी। मूर्ति की आकृति बहुत कुछ सुदर्शन की आकृति से मिलती जुलती थी। उस मूर्ति को वह प्रतिदिन दासियों के सिर पर रखवाकर धूम-धाम और गाजे-बाजे के साथ महल से बाहर प्रातःकाल ही ले जाती थी और दिन भर नगर में घुमा फिराकर सायंकाल होने पर अन्धेरा होते-होते महल में लौटा लाया करती थी।

कौमुदी महोत्सव के लिए महाराजा दधिवाहन ने समस्त प्रजा को आदेश दे दिया था। आदेश के अनुसार सभी पुरुषों को महोत्सव के दिन नगर से बाहर जाना था।

राज-घोषणा सुदर्शन ने भी सुनी। उसने विचार किया कि जो लोग राग-रंग और धूम-धाम में आनन्द लेते हैं उनके लिए तो यह उपयुक्त अवसर है। वे पूर्णिमा के दिन नगर से बाहर जाकर आनन्द करेंगे। किन्तु स्वयं सुदर्शन को तो उस दिन कार्तिक की पूर्णिमा—चातुर्मास की अन्तिम तिथि होने के कारण धर्म-ध्यान करना था। उसके लिए उसका नगर में ही रहना आवश्यक था। विचार करके सुदर्शन ने राजा से अपने लिए विशेष आज्ञा लेने का निश्चय किया।

सुदर्शन राजा दधिवाहन के पास गया और उनसे निवेदन किया—

"आपकी आज्ञा के अनुसार महोत्सव के दिन सभी पुरुषों को नगर से बाहर जाना है। किन्तु मेरे सामने एक धर्मसंकट उपस्थित हूआ है। चातुर्मास की अन्तिम पक्ष तिथि है। मैं दिन भर धर्मध्यान करना चाहता हूँ। आपकी कृपा हो तो मैं इस आज्ञा से मुक्त रहकर नगर में ही रहना चाहता हूं।"

सुदर्शन के चरित्र और उसकी धर्मनिष्ठा को राजा अच्छी तरह जानते थे। वे स्वयं एक चरित्रवान पुरुष थे। अतः सुदर्शन की प्रार्थना को सुनकर उन्हें प्रसन्नता ही हुई कि चलो, मेरे राज्य में एक ऐसा श्रेष्ठ व्यक्ति तो है, जिसकी दृष्टि में सांसारिक आनन्द उल्लास से अधिक धर्म के प्रति प्रेम है। अतः उन्होंने बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक कहा—

"सुदर्शन ! मुझे तुम पर गर्व है । ऐसे पुरुष जिस राजा के राज्य में हों, वह सचमुच ही भाग्यशाली हैं । मैं तुम्हें अपनी इस आज्ञा से मुक्त करता हूँ। तुम प्रसन्नतापूर्वक नगर में ही रह कर धर्मध्यान करो ।"

आज्ञा पा कर और महाराज को प्रणाम करके सुदर्शन प्रसन्न मन से अपने घर लौट आया ।

लेकिन राजा की इस आज्ञा से केवल सुदर्शन ही प्रसन्न नहीं था। एक और भी व्यक्ति था, जिसने इस आज्ञा को सुना और मन ही मन वह अत्यन्त हर्षित हुआ । वह व्यक्ति कौन था ?

पंडिता ।

पंडिता ने जब सुना कि महोत्सव के समय नगर के सब लोग नगर से बाहर रहेंगे और केवल सुदर्शन ही नगर में रहकर धर्मध्यान करेगा तो उसने सोचा कि अब उसका काम और भी आसान हो गया है। उसने यह प्रसन्नता का समाचार जा कर रानी अभया को सुनाया । रानी ने कहा—

"यह तो ठीक है कि सुदर्शन अकेला रहेगा । लेकिन इससे क्या ? तू उसे यहाँ ले कर आएगी कैसे ?"

एक कुटिल हँसी हँसते हुए पंडिता ने उत्तर दिया—

'सुदर्शन पौषधव्रत ले कर ध्यान में बैठा होगा ।

मैं दासियों को ले जा कर उसे उठा लाऊँगी। महारानीजी! आप चुपचाप देखिए कि मैं किस कुशलता से उसे यहाँ ले आती हूं। यहाँ लाने के बाद तो आप उसे अपना बना लेंगी न ?"

रानी को यदि सन्देह था तो यही कि पंडिता सुदर्शन को उसके महल में कैसे लाएगी। उसे इस बात का तो निश्चय था कि एक बार सुदर्शन यहाँ आ जाए, फिर तो उसके रूप के प्रबल आकर्षण से वह स्वयं ही खिंच जाएगा और उसका दास बन जाएगा। अतः उसने पंडिता से इतना ही कहा—

"तू सुदर्शन को एक बार यहाँ लेकर आ तो सही।"

पौषधशाला का वातावरण एकदम शान्त और स्वच्छ था। किसी प्रकार का शोरगुल नहीं, किसी प्रकार का आडम्बर नहीं। वहाँ पर योग्य स्थान पर एक तेजस्वी व्यक्ति मौन हो कर ध्यानमुद्रा में बैठा हुआ था। उसके कान्तिमान चेहरे को देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो स्वयं कामदेव किसी विशेष साधना में तत्पर हो कर ध्यानस्थ बैठे हों।

यह व्यक्ति हमारा चरित्रनायक सुदर्शन था।

सुदर्शन राजा की आज्ञा पा कर आज प्रातःकाल से ही पौषधव्रत लेकर यहाँ ध्यानस्थ था। अब धीरे-धीरे सन्ध्या हो चली थी। उसी समय कुछ विश्वस्त दासियों के सिर

र कामदेव की मूर्ति को रख कर पंडिता वहाँ आई। ाज उसने कामदेव की मूर्ति को वैसे ही सादे वस्त्र पहनाए ा, जैसे पौषध के समय पहने जाते हैं। इसके अतिरिक्त हम पने पाठकों को यह तो बता ही चुके हैं कि पंडिता ने ामदेव की मूर्ति बहुत कुछ सुदर्शन की आकृति से मिलती-ुलती बनाई थी।

पंडिता ने पौषधशाला में जा कर कामदेव की उस ्ति को तोड़-फोड़ कर एक एकान्त स्थल पर फेंक दिया। सके बाद वह सुदर्शन के समीप आई और उससे कहा—

"सेठ सुदर्शन ! आपने पौषधव्रत लिया है और आप यान में लीन हैं। मैं आपको किसी विशेष प्रयोजन से ़सी विशेष स्थान पर ले जाने के लिए आई हूं। आप ुपचाप इसी तरह से बैठे रहिएगा। आप कुछ भी बोलें हीं। वस्तुतः मेरे ऐसा कहने की भी आवश्यकता नहीं , क्योंकि आप एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति हैं और अपने व्रत को ाप कदापि नहीं तोड़ सकते। यदि आप जरा भी बोलेंगे ा हिलेंगे-डुलेंगे तो आपका ध्यान टूट जायगा और व्रत-ंग होगा और इससे आपकी बदनामी होगी।"

सुदर्शन ने आँखें बन्द किए हुए ध्यानमुद्रा में ही डिता की बातें सुनी। उन्होंने समझ लिया कि दाल में ़छ काला अवश्य है। किन्तु इस समय तो वे एक समय-ऋशेष के लिए अपने शरीर का उत्सर्ग कर चुके थे। अपने

शरीर से उन्हें इस समय कोई प्रयोजन नहीं था, को
ममत्व नहीं था। इसके अतिरिक्त कायोत्सर्ग करना स्वयं ही
उपसर्गों को आमंत्रित करना है। उन उपसर्गों पर विज
पाना, उन वाधाओं और कष्टों को झेल कर अपनी काया प
विजय पाना ही इस तपस्या का लक्ष्य है।

सुदर्शन ने विचार किया कि यह प्रतिकूल परिषह आ
है। किन्तु अब उस पर विजय तो पाना ही होगा। इस प्रति
कूल परिषह से घबरा कर अपने व्रत को तोड़ देना तो काय
ता और पाप होगा। उन्होंने यह भी विचार किया कि अधि
से अधिक यह जो भी व्यक्ति यहाँ आया है, उसके शरीर
कहीं ले जा कर नष्ट ही तो कर देगा? भले ही वह ऐ
कर दे, भले ही वह उसे कितनी भी पीड़ा पहुँचाए, कि
व्रत अखंड ही रहना चाहिए····

यह विचार करके सुदर्शन एक श्रेष्ठ तपस्वी की भाँ
पंडिता की सारी बात सुनकर भी विचलित नहीं हुआ और
शान्त रह कर अपने ध्यान में मग्न रहा।

और दुष्टा पंडिता ने दासियों से सुदर्शन को उठवा क
कामदेवमूर्ति के समान उनके सिर पर रखवाया और उ
तरह गाजे-बाजे के साथ उसे महल की ओर ले चली।

प्रतिदिन कामदेव की मूर्ति इसी प्रकार नगर में घु
कर महल में वापस लाई जाती थी। आज भी वह ला
रही थी। अतः किसी भी व्यक्ति को कोई सन्देह नहीं हु

द्वारपालों की दृष्टि को भी चतुर पंडिता ने इसी तरकीब से धोखा दे दिया और कामदेव की मूर्त्ति के रूप में सुदर्शन को उठा कर वह रानी के महल में ले आई।

महल के एकान्त कक्ष में सुदर्शन को बिठा कर पंडिता ने रानी अभया को सूचित किया। रानी तो सुदर्शन के आने की राह में पलकें बिछाए बैठी ही थी। वह अपना श्रेष्ठतम साज-शृंगार करके तुरन्त उस कक्ष में आई।

उत कक्ष में सुदर्शन और रानी के अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यक्ति उस समय नहीं था।

अथवा यह भी कहा जा सकता है कि एक नागिन थी और उसके सामने था उसका एक सुन्दर शिकार।

रानी बोली, अथवा नागिन ने फूत्कार किया—

'अरे! मेरे कक्ष में यह कौन छिपकर बैठा है? आकृति से तो यह सुदर्शन सेठ जैसा लगता है। तब क्या तुम सुदर्शन सेठ ही हो? राजा ने तो तुम्हें धर्मध्यान करने के लिए आज के दिन नगर में रहने की आज्ञा दी थी, और तुम हो कि एक पापी चोर की भाँति मेरे कक्ष में छिपे बैठे हो? तुम्हें तो लोग बड़ा धर्मात्मा आदमी समझते थे और तुम वास्तव में इतने गिरे हुए पुरुष निकले!"

वस्तुतः सुदर्शन को शान्त, ध्यानमुद्रा में बैठे देख ही उसके यौवन और रूप को देखते ही पानी-पानी हो गई थी। वह आतुर हो चली थी कि कब सुदर्शन उस पर

आसक्त होकर उसके प्रेम की भिक्षा उससे मांगे। किन्तु वह चतुराई से सुदर्शन को अपने वश में करना चाहती थी। साम-दाम-दंड-भेद, किसी भी मार्ग का आश्रय वह ले सकती थी।

कक्ष में आते ही रानी ने जो कुछ कहा था, वह सुदर्शन के मन में भय का संचार करने के लिए। उसने सोचा था कि इस प्रकार सुदर्शन जब देखेगा कि उस पर रानी के महल में चोरी से घुस आने का आरोप लगाया गया है, तब वह अपने सम्मान और प्राणों के भय से स्वयं को रानी की इच्छा पर छोड़ देगा और जैसा रानी चाहेगी, वैसा ही करेगा।

किन्तु सुदर्शन ने रानी के कथन को शान्ति से सुना और वह मौन ही रहा।

सत्य की दृढ़ आधार-शिला पर खड़े हुए संकल्पवान वीर पुरुष किसी भी भय से डिगते नहीं।

सुदर्शन भी ऐसा ही एक वीर पुरुष था।

उसे मौन देखकर रानी ने कहा—

"देखो सुदर्शन! इस तरह काम नहीं चलेगा। वस्तुतः मैं तुम पर मोहित हूँ। तुम्हारा प्रेम चाहती हूँ। यौवन और सौन्दर्य का सागर मेरी देह में लहरा रहा है। और तुम जानते हो कि मैं यहाँ की महारानी हूँ, जो चाहूँ, वह कर सकती हूँ। मेरे एक इशारे पर तुम्हारे प्राण ले लिए जा सकते हैं। एक ओर तुम्हारे लिए मृत्यु है और दूसरी

ओर चम्पानगरी की अनन्त सौन्दर्यवती महारानी का प्रेम। बोलो तुम इन दोनों में से क्या चुनते हो ? तुम नगरसेठ हो, नगर में तुम्हारी प्रतिष्ठा है। यदि तुम मेरी बात को स्वीकार नहीं करोगे तो जानते हो क्या परिणाम होगा ? मैं तुम पर लांछन लगाऊँगी। सारी प्रजा मेरी ही बात को सत्य मानेगी और तुम्हें ढोंगी, पापी, नीच कह कर तुम पर थूकेगी। महाराजा तुम्हें प्राणदड देंगे। इस प्रकार अपनी प्रतिष्ठा को नष्ट कर देने से क्या लाभ ? स्पष्ट है कि तुम्हारे लिए एक ही मार्ग है—मुझसे प्रेम करो। मेरे प्यासे हृदय को शान्त करो। मुझे अपने हृदय से लगा लो। तुम्हें वचन देती हूँ कि यह बात बिलकुल गुप्त रहेगी और हम एक दूसरे से आजीवन प्रेम करते रहेंगे·······"

सुदर्शन मौन, निश्चल !

"सुदर्शन! मूर्खता मत करो। देखो, मैंने अब तक तुम्हारे साथ कोई कठोरता का व्यवहार नहीं किया है, किन्तु तुम जानते हो मेरी शक्ति को। अतः मेरी बात मानो, उठो और मेरे साथ दाम्पत्यसुख को भोगकर अपनी तपस्या का फल पाओ।"

सुदर्शन अविचलित !

तब रानी स्वयं विगलित होकर अनुनय कर उठी—

"प्रिय सुदर्शन ! देखो, मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। तुमसे प्रार्थना करती हूँ, तुम्हें अपना सर्वस्व समर्पित करती हूँ। यदि सदा सदा के लिए, नहीं तो, एक बार—केवल एक बार

मुझे अपने गले लगा लो। मैं इसी की याद में अपना शेष जीवन काट दूंगी। सुदर्शन ! मुझ पर दया करो…'

और सचमुच ही रानी सुदर्शन के पैरों पर अपना सिर रख कर फूट-फूटकर रो पड़ी।

रानी रोती रही और सुदर्शन विचार करता रहा—

'रानी मोह में फँस गई है। क्षणिक सुख की लालसा में यह अपने पवित्र पातिव्रतधर्म को नष्ट कर देना चाहती है, और साथ ही मेरे शील को भी भंग करना चाहती है। मैं अपने प्राण तो दे सकता हूं, किन्तु अपने धर्म को, चरित्र को नष्ट नहीं कर सकता। रानी मेरे सौन्दर्य और यौवन पर मोहित होकर करणीय अथवा अकरणीय सभी कार्य कर सकती है। यहाँ तक कि राजा की हत्या करके अपनी आकांक्षापूर्ति के लिए मुझे राजा भी बना सकती है। किन्तु अपने धर्म को खंडित करके राज्य और विलास के सुख को लेकर क्या मैं कभी सुखी हो सकता हूं ? इसके अतिरिक्त जो स्त्री अपने विवाहित पति की हत्या करके अन्य पुरुष से अपना सम्बन्ध कर सकती है, उस स्त्री के प्रेम का क्या विश्वास ? यह कुकृत्य करने पर उतारू हो गई है। इसे मैं कैसे समझाऊं ? अब मेरा क्या कर्त्तव्य है………'

सुदर्शन के मन में यही विचार चल रहे थे। रानी ने जब देखा कि उसकी प्रार्थना पर सुदर्शन जरा भी विचलित नहीं हुआ है, तब उसने निश्चय किया कि अब भय दिखाने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। यह विचार करते

वह क्रोध से जल उठी। उसकी भ्रकुटियाँ तन गईं, आँखें अंगारों की भांति जलने लगीं। क्रुद्ध सर्पिणी की भांति वह भयंकर फूत्कार उठी—

"सुदर्शन ! आखिर तू रहा एक बनिया ही। और बनिया हो कर तेरा ऐसा साहस ! तू चाहे नगरसेठ हो, किन्तु है तो मेरी प्रजा ही। तेरा जीवन मेरी कृपा पर निर्भर है। मैं जब तुझसे प्रार्थना कर रही हूँ, अनुनय-विनय कर रही हूँ, तब तू सुनता नहीं और अपने अहंकार में डूबा जा रहा है। लेकिन तू यह बात अच्छी तरह समझ ले कि प्रसन्न होने पर मैं कल्पलता के समान हूं, किन्तु क्रोधित हो जाने पर प्राण ले लेने वाली तलवार की धार हूँ। मैं अन्तिम बार तुझसे कहती हूँ, ध्यान से सुन ले। यदि मेरी बात तू स्वीकार कर लेगा तो मैं तेरी दासी बनकर रहूँगी, तुझे अपना सर्वस्व सौंप दूँगी। किन्तु यदि तू अब भी मेरी बात नहीं मानेगा तो मैं तेरे प्राण ले लूँगी। बोल, तू क्या चाहता है ? जीवन और आनन्द अथवा मृत्यु ?"

रानी अब राक्षसी बन चुकी थी। कोई भी सामान्य व्यक्ति उसके इस विकराल रूप और उसके इस भयंकर क्रोध के सामने भयभीत हो जाता। किन्तु हमारा चरित्रनायक सुदर्शन असाधारण वीर पुरुष था। सत्य और धर्म की तुलना में संसार की कोई भी अन्य वस्तु उसके लिए हीन थी। वह धर्मनिष्ठ जीवन व्यतीत करता था, किन्तु उसे जीवन से

कोई मोह नहीं था। और नश्वर जीवन से जिसे मोह नहीं, उसे मृत्यु का भय कैसे हो सकता है ?

सुदर्शन ने अब विचार किया कि रानी की मति मारी गई है, केवल मौन रहने से वह समझेगी नहीं। अतः उसे अपने ध्यान को पूर्ण करके रानी को समझा कर उसे मोह से मुक्त करना चाहिए। यह उसका कर्त्तव्य भी है।

सुदर्शन ने ध्यान भंग किया। मुख पर एक मधुर मुस्कराहट ला कर उसने रानी अभया से कहा—

माता ! क्रोध तथा मोह को त्याग दीजिए। विचार कीजिए कि आप महारानी हैं और सारी प्रजा की माता हैं। मैं भी आपकी प्रजा हूं, और इस नाते आपका पुत्र हूँ। गुरुपत्नी, मित्र की पत्नी, पत्नी की माता तथा स्वयं अपनी माता के अतिरिक्त राजा की पत्नी भी माता होती है। और वह माता सबसे बड़ी होती है। आपको वही गौरवपूर्ण पद प्राप्त है। आवेश को त्याग कर अपनी स्थिति पर विचार कीजिए। आप मुझे जो कार्य करने को कह रही हैं, वह किसी भी प्रकार से योग्य नहीं, न मेरे लिए, न आपके लिए।

"आपने अपना निश्चय मुझे सुना दिया है। मैं भी अपना निश्चय आपको बता रहा हूँ—मेरुपर्वत डिग सकता है, पृथ्वी अपना आधार त्याग सकती है, सूर्य प्रकाश के स्थान पर अन्धेरा दे सकता है, संसार का प्रत्येक असंभव संभव हो सकता है, किन्तु यह अच्छी तरह जान लीजिए

कि मैं अपने धर्म को कभी भी नहीं छोड़ सकता, परस्त्री मेरे लिए माता के समान रही है और रहेगी। मैं आपकी प्रत्येक आज्ञा मानने के लिए प्रस्तुत हूँ, किन्तु वे अनतिक नहीं होनी चाहिए, धर्म के विरुद्ध नहीं होनी चाहिए।

"आपने मुझे पौषध के समय यहाँ मंगवाया है। आपके इस अपराध को मैं क्षमा करता हूँ। किन्तु यह निश्चित मानिए कि जिस उद्देश्य से आपने मुझे बुलाया है, वह कभी पूर्ण नहीं होगा। आपके प्रलोभन व्यर्थ हैं, प्रार्थना अर्थहीन है और आप जो मृत्यु का भय मुझे दिखा रही हैं, वह भी निरर्थक है। मृत्यु का मुझे कोई भय नहीं है। यदि अब भी आप सन्मार्ग पर चलना चाहें तो उसमें आपका और मेरा दोनों का कल्याण है, किन्तु यदि आपका निर्णय नहीं बदलता है तो मेरा भी निर्णय अटल है—आप चाहें तो मेरे प्राण ले सकती हैं, अपना धर्म आपको नहीं दूँगा।"

कोई विवेकवती नारी होती तो सुदर्शन का यह सदुपदेश उसके ज्ञान-नेत्र खोल देता। किन्तु रानी अभया मोह से ग्रसित थी। उसे सुदर्शन की वे बातें और भी कटु लगीं। ज्ञानी पुरुषों ने ठीक ही कहा है—'कामान्ध व्यक्तियों को कोई उपदेश फल नहीं देता।'

अस्तु, सुदर्शन के मौन होते ही अभया गर्ज उठी—

"मुझे माता कहने का साहस न कर और अपने ये उपदेश अपने पास ही रख। मैं कपिला नहीं हूँ कि तेरे वाग्जाल में फँस जाऊँ। तूने कपिला को तो अपने आपको

नपुंसक कहकर धोखा दे दिया, किन्तु मुझसे बच कर तू न
जा सकता । अब भी समय है, विचार कर ले । मेरे यहाँ
या तो तू मेरी इच्छा की पूर्ति करके ही जा सकता है य
सीधा मृत्यु के द्वार पर ही । यदि एक बार मैंने सैनिकों व
बुला कर तुझे उनके हवाले कर दिया, तब फिर तेरी मुक्ति
नहीं है । फिर तेरी प्रार्थना पर भी कोई ध्यान नहीं दूंगी
ऐसा करने का अर्थ होगा मेरी अपनी बदनामी । अतः अपन
अन्तिम उत्तर मुझे दे, बोल क्या चाहता है ?"

अन्य कोई व्यक्ति होता तो भय से अथवा आकर्षण
अभया जैसी सुन्दरी स्त्री को पा कर धर्म से पतित ह
जाता । किन्तु सुदर्शन एक अडिग चट्टान की भाँति स्थि
ही रहा ।

रानी ने जब सुदर्शन को मौन ही देखा तो उसने य
मान लिया कि सुदर्शन डिगेगा नहीं । कोई भी आकर्षण
—मृत्यु का भय भी इसे विचलित नहीं कर सकेगा । त
उसने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया ।

रानी ने अपने ही हाथों से अपने वस्त्र कुछ फाड़ डाले
गालों तथा स्तनों पर अपने नखों के चिह्न बना लिए और
घंटा बजाकर सैनिकों को आवाज दी ।

भय के घंटे की आवाज तथा रानी की पुकार सुन कर
महल के रक्षक तुरन्त उस कक्ष में दौड़े आए । उन्हें लक्ष
करके रानी ने क्रोध से भर कर कहा—

"रक्षको ! क्या तुम लोग सोते रहते हो ? तुम्हारा पहरा होते हुए भी यह पापी यहाँ कैसे चला आया ? इस दुष्ट को पकड़ लो। इसने मेरा अपमान किया है, मेरे सतीत्व को नष्ट करने का प्रयत्न किया है। देखते नहीं हो, इसने मेरे वस्त्रों को फाड़ दिया है, मेरे अंगों को नोंच डाला है। यह तो मैं थी, इसलिए इसके चंगुल से बच गई, कोई अन्य स्त्री होती तो यह पापी उसके शील को नष्ट ही कर देता। शीघ्रता करो, इस दुष्ट को वन्दी बना कर ले जाओ और सूली पर लटका दो। मेरी प्रतिज्ञा है कि जब तक इसे सूली पर न चढ़ा दिया जायगा, मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगी।"

आदेश दे कर रानी भीतर के कक्ष में चली गई। सैनिक सुदर्शन को वन्दी बनाने के लिए आगे बढ़े। सैनिकों के नायक ने सुदर्शन को जब गौर से देखा तो उन्हें पहचान लिया। उसे घोर आश्चर्य हुआ। वह विचार करने लगा कि सुदर्शन जैसा धार्मिक तथा चरित्रवान व्यक्ति कैसे ऐसा नीच कार्य कर सकता है ? बात तो यह असंभव है, लेकिन फिर ये यहाँ आए कैसे ? क्यों आए ?

नायक इसी उधेड़बुन में पड़ा था। उसे यह विश्वास ही नहीं होता था कि सुदर्शन सेठ जैसा सदाचारी व्यक्ति कभी ऐसा कार्य कर सकता है। अन्त में उसने इस रहस्य को स्वयं सुदर्शन से ही पूछने का निश्चय किया। उसने पूछा—

"सेठजी ! सारा नगर आपको सदाचारी मानता है। मुझे भी विश्वास नहीं होता उन बातों पर, जो महारानी ने कही हैं। किन्तु महारानी ने आप पर अभियोग लगाया है, वह आपने सुना ही है। इसलिए हम आपसे पूछते हैं कि आखिर यह रहस्य क्या है? वास्तविक बात आप ही बता सकते हैं। कृपा कीजिए और हमें बताइये कि आप यहाँ क्यों और कैसे आए, ताकि हम आपको सूली पर चढ़ाने के पापकर्म से बच सकें।"

सुदर्शन ने शान्तिपूर्वक नायक की बात सुनी। किन्तु उसने विचार किया कि रानी उसकी माता हैं, वह उन्हें माता कह चुका है। अब यदि वह वास्तविक बात नागर को बता देता है तो माता अपमानित होंगी, राजा के द्वारा उन्हें दंड भी दिया जायगा। तब क्या मैं अपनी माता को अपमानित होने दूँ? क्या उन्हें दंडित होने दूँ? नहीं, पुत्र का यह कर्त्तव्य नहीं है। पुत्र का कर्त्तव्य है कि वह स्वयं सब प्रकार का कष्ट सहकर भी अपनी माता की रक्षा करे, उसके सम्मान की रक्षा करे।

यह विचार करके सुदर्शन ने अपने प्राणों का मोह त्याग दिया और रानी अभया के सम्मान की रक्षा करने के लिए उसने मौन ही रहने का निश्चय किया। नायक के प्रश्न के उत्तर में वे मौन ही रहे, केवल एक निर्दोष, मधुर मुसकान उनके चेहरे पर झलक उठी।

नायक ने बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सुदर्शन ने एक बार जो निश्चय कर लिया, वह पत्थर की लकीर हो गया

उसके किसी प्रश्न के उत्तर में उन्होंने एक शब्द भी अपनी रक्षा के लिए नहीं कहा ।

हार कर नायक ने निश्चय किया कि सुदर्शन सेठ को महाराजा के सम्मुख उपस्थित कर दिया जाय। महाराजा स्वयं सारी घटना को जान कर उचित निर्णय कर देंगे। उसने सैनिकों को आदेश दिया—

"सेठ सुदर्शन का हम सम्मान करते हैं। किन्तु रानी ने इन पर अभियोग लगाया है, और ये उत्तर में केवल मौन हैं। अतः इन्हें महाराजा की सेवा में उपस्थित करो।"

सैनिकों के पहरे में बन्दी सुदर्शन राजा दधिवाहन के सामने उपस्थित किए जाने के लिए ले जाए गए।



अभियोग और दण्ड

रक्षकों के पहरे में वन्दी सुदर्शन रात में ही महाराजा दधिवाहन के सामने ले जाए गए। महाराजा उस समय नगर से वाहर अपने डेरे में थे। रक्षकों के नायक ने महाराजा से निवेदन किया—

"परम भट्टारक महाराज दधिवाहन की विजय हो! सेठ सुदर्शन इस समय महारानी के कक्ष में पाए गये हैं। महारानी ने नगरसेठ पर अभियोग लगाया है कि वे महारानी का अपमान करना चाहते थे, उनके सतीत्व पर वे आक्रमण करने को प्रस्तुत थे। महारानी ने नगरसेठ को तुरन्त सूली पर चढ़ाने का आदेश दिया है। किन्तु मैं नगरसेठ को आपके सामने लाया हूँ, आपका आदेश प्राप्त करने के लिये। महाराजा निर्णय दें।"

सुदर्शन को इस अवस्था में देख कर और नायक द्वारा घटना का वर्णन सुनकर राजा दधिवाहन आश्चर्य में डूब कर कुछ समय के लिए विजड़ित हो कर रह गये। यह क्या असंभव वात वे सुन रहे हैं? परम सदाचारी सुदर्शन और यह जघन्य कृत्य! क्या यह संभव है? क्या सूर्य भी कभी अन्धकार दे सकता है? नहीं, यह सभव नहीं·······

कुछ देर बाद महाराजा दधिवाहन बोले—

"नायक ! तुम जा सकते हो। सुदर्शन सेठ को सम्मानपूर्वक विश्राम करने दो। मैं प्रातःकाल उनसे बात करूँगा।'

महाराजा को प्रणाम करके नायक सुदर्शन सहित चला गया। उसके चेहरे पर सन्तोष की झलक थी, मानो उसे विश्वास हो गया हो कि सदाचारी सुदर्शन ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकते और महाराजा दधिवाहन अवश्य ही उनसे वास्तविक बात को जान लेंगे। महाराजा ने अच्छा ही किया कि किसी आवेश में आ कर उन्होंने कोई निर्णय नहीं दिया।

और महाराजा दधिवाहन को सारी रात नींद नहीं आई। वे विचार करते रहे—अवश्य ही कोई रहस्य है इस घटना के पीछे। सुदर्शन जैसा व्यक्ति किसी बुरे प्रयोजन से इस रात्रि के समय मेरे महल में नहीं जा सकता। वह महारानी का अपमान करने जैसा कुकृत्य भी नहीं कर सकता। देखूँगा, प्रातःकाल उससे पूछूँगा, रहस्य का पता तो लगाना ही होगा।

प्रातःकाल होने पर महाराजा दधिवाहन स्वयं ही सुदर्शन के पास गये और उनसे पूछा—

"नगरसेठ ! आप पर जो अभियोग लगाया गया है, उस पर मुझे विश्वास नहीं होता। आपके आचरण को मैं भी जानता हूँ और सारी प्रजा भी। अतः आपसे पूछता हूँ कि

आप बताएं कि आप रात्रि को महारानी के महल में कैसे और क्यों गए ?"

किन्तु सुदर्शन ने तो इस विषय में मौन धारण कर लिया था। उन्हें मृत्यु का आलिंगन कर लेना स्वीकार था, किन्तु वे महारानी की प्रतिष्ठा को कलंकित नहीं करना चाहते थे। वे यह भी नहीं चाहते थे कि महारानी के आचरण को जान कर परमकृपालु महाराजा दधिवाहन कष्ट पाएं। यदि महाराजा को यह पता चल जाता कि रानी का वास्तविक चरित्र क्या है, तो उस उदार राजा को कितनी मानसिक पीड़ा होती ?

अस्तु, महाराजा के प्रश्न के उत्तर में सुदर्शन ने कुछ भी नहीं कहा। महाराजा ने बहुत प्रयत्न किया, कहा कि निस्संकोच हो कर वे सारी बात बता दें, यदि कोई सामान्य अपराध अनजाने ही सुदर्शन से हो भी गया होगा तो वे उसे क्षमा कर देंगे। किन्तु सुदर्शन ने अपना मौनभंग नहीं किया।

महाराजा बड़ी उलझन में पड़े। सुदर्शन का मौन कुछ सन्देह अवश्य उत्पन्न कर सकता था, किन्तु महाराजा को फिर भी कुछ विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने उस घटना की छानबीन महल में आ कर ही करने का निर्णय किया।

महाराजा महल में लौट आए। धीरे-धीरे सारी प्रजा को इस घटना का पता चल गया। किन्तु प्रजा में एक भी व्यक्ति ऐसा न था, जिसे विश्वास हो सके कि सेठ सुदर्शन

ऐसा कर सकते हैं। प्रत्येक नागरिक यही कहता था—ऐसा हो नहीं सकता। अवश्य ही कोई रहस्य है। रहस्य का पता लगाया जाना चाहिए। सुदर्शन पर लगाया गया यह अभियोग झूठा है।

राजा दधिवाहन महारानी के महल में आए। उन्होंने देखा—महारानी अस्त-व्यस्त स्थिति में पड़ी हैं और क्रोध से भरी हुई हैं। उन्होंने पूछा—

"क्या बात है रानी ? यह हालत क्यों बना रखी है ? कुशल तो है न ?"

"जी, यह कुशल ही है कि मेरा सतीत्व बच गया। महाराज ! आज मैं लज्जा से गड़ी जा रही हूं। आपके होते हुए कोई दुष्ट इस प्रकार अपमान करे और मेरा सतीत्व नष्ट करने का साहस करे, इससे बड़ी लज्जा की बात मेरे और आपके लिए क्या हो सकती है ? और आपने उस दुराचारी को अब तक जीवित रख छोड़ा है, यह और भी अधिक लज्जा की बात है। मैंने प्रतिज्ञा की है कि जब तक उस पापी को सूली पर नहीं चढ़ा दिया जाएगा, मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगी। अब या तो वही जीवित रह सकता है या मैं ही। आप किस विचार में पड़े हैं ? उसे प्राणदण्ड क्यों नहीं देते ?

महाराज असमंजस में पड़े रह गये। कैसे निर्णय हो ? वास्तविकता क्या है ? सुदर्शन कुछ बोलता नहीं, और उसके सदाचरण पर सारी प्रजा को विश्वास है। इधर रानी

पर यह भीषण आरोप लगा रही है। कैसे निर्णय किया जाय, क्या निर्णय किया जाय ?

उन्होंने रानी से पूछा—

"रानी ! कुछ शांत होकर उत्तर दो। यह विश्वास रखो कि दधिवाहन के राज्य में अपराधी बच कर नहीं जायगा। उसे अपने पाप का दण्ड अवश्य मिलेगा। किन्तु यह बात आखिर किस समय की है ? सुदर्शन तुम्हारे कक्ष में आया ही कैसे ? रक्षक कहाँ थे ? दासियाँ क्या कर रही थीं ?"

महाराज ने जब कहा कि—'विश्वास रखो, दधिवाहन के राज्य में अपराधी बचकर नहीं जाएगा, तब रानी का कलेजा भीतर ही भीतर काँप उठा था। किंतु उत्तर में वह और भी अधिक चीख कर बोली—

"धिक्कार है मुझे कि मैं आपके जैसे राजा की रानी हूँ। आपकी रानी का सतीत्व नष्ट करने का एक दुष्ट प्रयत्न करे और आप केवल प्रश्न पर प्रश्न ही करते चले जांय। कोई अन्य सामान्य व्यक्ति होता तो वह अपनी पत्नी के सम्मान के लिये लड़ मरता। किंतु आप हैं कि विचार करने का ढोंग कर रहे हैं। दासियाँ थकी हुई थीं। रक्षकों की आंखों में धूल झोंक कर वह पापी आ गया होगा, मैं क्या जानूं ?"

राजा ने रानी का रूप देखा, बात सुनी और किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके। वे विचार करते रहे—सुदर्शन

ऐसा कर तो नहीं सकता। यदि वह निरपराध हो और मैं उसे दण्ड दे दूं तो बड़ा अनर्थ होगा। प्रजा सुदर्शन को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करती है। विद्रोह कर देगी और दूसरी तरफ यदि रानी का अभियोग सत्य ही हो और अपराधी को दण्ड न मिले, तब भी अनुचित होगा।

इसी उलझन में पड़े राजा दधिवाहन फिर सुदर्शन के पास आए। उन्हें विश्वास था कि सुदर्शन बोलेगा तो सत्य ही बोलेगा। लेकिन यदि वह मौन ही रहा तो समस्या जटिल हो जायगी। उन्होंने सुदर्शन से फिर कहा—

"देखो सुदर्शन ! जो तथ्य है, वह मुझे बताओ। मैं तुम पर पूरा विश्वास करता हूँ। एक बार मैं रानी के कथन पर तो अविश्वास कर भी सकता हूँ, किन्तु तुम्हारे कथन पर नहीं। बोलो, कहो, यह क्या रहस्य है ?"

मौन !

"तुम्हारे इस मौन का क्या अर्थ समझा जाय ? मौन का अर्थ क्या तुम्हारी स्वीकारोक्ति मानी जाय ? लेकिन उस पर मुझे विश्वास नहीं होता। आखिर तुम कुछ कहते क्यों नहीं हो ?"

मौन और मुस्कुराहट !

वह मुस्कराहट मानो कहती हो कि—राजन् ! मैं विवश हूँ। झूठ मैं बोल नहीं सकता, और सत्य का उद्घाटन मैं कर नहीं सकता।

राजा ने बहुत समझाया, बहुत आश्वासन दिए, यह कहा कि यदि तुम सत्य बात कह दोगे तो मैं तुम्हें क्षमा कर दूँगा। किन्तु सुदर्शन को नहीं बोलना था, सो नहीं ही बोला।

विवश होकर राजा लौट आया। उसने अपने प्रधान मंत्रीश्वर को भी सुदर्शन से पास भेजा, यह विचार करके कि शायद सुदर्शन उन्हें सत्य घटना बता दे। किन्तु परिणाम वही रहा। अन्त में राजा ने अपने मंत्रियों से सलाह ली—

"मंत्रिगण ! बड़ी समस्या है। सुदर्शन पर रानी का अभियोग है। सुदर्शन कुछ कहता नहीं। और सुदर्शन ऐसा कृत्य भी कर सकता है, यह विश्वास नहीं होता। क्या किया जाय ?"

मंत्रियों ने विचार करके कहा—

"राजन् ! एक ही उपाय है। प्रयत्न करके देखा जा सकता है। प्रजा में से कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों को चुन कर सुदर्शन के पास भेजा जाय। सम्भव है कि वे सुदर्शन को समझाने में सफल हों और उससे घटना की वास्तविकता को जान सकें।"

राजा ने विचार करके कहा—

"यह ठीक ही है। सम्भव है, प्रजा के प्रतिनिधियों को सफलता मिल जाय। कदाचित् सुदर्शन ने उन्हें भी कुछ नहीं बताया, तब फिर क्या किया जाय और क्या नहीं किया जाय ? इस विषय में भी प्रजा के उन प्रतिनिधियों से सलाह

ली जायगी। यदि उन्होंने भी सुदर्शन को अपराधी स्वी-
ार कर लिया, तब हमें निर्णय करने में सुविधा होगी।"

इस निर्णय के अनुसार प्रजा के प्रतिनिधियों को सुदर्शन
पास भेजा गया। जा कर उन्होंने कहा—

"सेठजी! हम जानते हैं, और हमें विशवस है कि आप
दाचारी हैं। आप तो किसी भी अन्य व्यक्ति के घर पर
ते ही नहीं। दूसरे के घर जाने का आपने त्याग किया
ा है। हम यह भी जानते हैं कि आप पर-स्त्री को माता
समान मानते हैं। फिर महारानी के साथ अनुचित व्यव-
र करने आप जाँय, यह एकदम असम्भव बात है।

"किन्तु महारानी आप पर अभियोग लगा रही हैं।
पका कर्त्तव्य है कि उस अभियोग का प्रतिवाद करें और
च्ची बात को प्रकट करें। आपके ऐसा करने पर उचित
ाय किया जा सकता है।"

प्रतिनिधि समझाते रहे और सुदर्शन मौन बने रहे।
प्रतिनिधियों ने फिर प्रश्न किया—

"नगरसेठ! आप कोई उत्तर क्यों नहीं देते? मौन का
र्थ क्या यह नहीं माना जाय कि आप अपराधी हैं? हम
पको विश्वास दिलाते हैं कि कदाचित् आपका अपराध
ा भी तो सारी प्रजा आपके साथ है। हम से
र्थना करके आपको क्षमा करा देंगे। मान ल
। भूल मनुष्य से हो ही जाती है। अ
ही गई हो तो वह क्षम्य मान ली

"किन्तु हमें तो यह विश्वास है कि आप निरपराध हैं। ऐसी स्थिति में मौन रह कर आप अपने आपको अपराधी क्यों बनाते हैं? आप प्रजा के लिए प्राण-स्वरूप हैं; प्रजा आपको अत्यन्त प्यार करती है। निरपराध होने पर भी आप पर कलंक लगे, यह हमारे लिए घोर दुःख का विषय होगा। हम यह जानते है कि आप महान् त्यागी हैं। आपको अपने जीवन का मोह नहीं है। किन्तु यह प्रश्न केवल आपके जीवन का तो नहीं है। इसके साथ प्रतिष्ठा का भी प्रश्न है। यदि आपकी प्रतिष्ठा को कलंक लगा तो आपकी स्त्री और बच्चों का जीवन भी दुःखी हो जायगा। उन्हें इस घटना के कारण जीवनभर कलंक का भार ढोना पड़ेगा। क्या यह उचित होगा? श्रीमान्! जरा विचार कीजिए और हमें सच्ची बात बता दीजिए।"

प्रजा के प्रतिनिधि प्रत्येक प्रकार से समझा-समझा कर थक गए। किन्तु सुदर्शन अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। उसने तो निश्चय कर लिया था कि चाहे कुछ भी हो, जीवन समाप्त हो जाय, प्रतिष्ठा कलंकित हो जाय, स्त्री-बच्चों को दुःख भोगना पड़े, किन्तु माता पर संकट नहीं आने दूंगा।

सुदर्शन अपने इसी संकल्प पर अचल रहा।

अन्त में प्रतिनिधियों ने निराश होकर कहा—

"हम हृदय से चाहते थे कि आप पर लगाया गया यह कलंक दूर हो जाय। आपको किसी प्रकार से कोई हानि न

हो। आपके शरीर को, आपकी प्रतिष्ठा को, आपके परिवार को कोई आंच नहीं आए। साथ ही हमें भी आपके समान सदाचारी और योग्य नगर-नायक का आधार बना रहे। महाराजा भी यही चाहते हैं। किन्तु दुर्भाग्य है, हम सब लोगों का कि आप मौनभंग ही नहीं करते। हम निराश हो कर जा रहे हैं।"

सुदर्शन के हठ से निराश और क्रोधित हो कर प्रजा के प्रतिनिधि लौट आए।

× × ×

राजा ने प्रतिनिधियों से पूछा—

"कहिए, सुदर्शन से बातचीत करके आप लोग किस निर्णय पर पहुँचे ?"

"धर्मावतार ! सुदशन ने तो जो मौन धारण किया है, वह भग ही नहीं होता। हमने उसे बहुत समझाया, किन्तु वह कुछ भी कहने के लिए अपना मुंह खोलते नहीं।"—प्रतिनिधियों ने उत्तर दिया।

तब राजा ने गभीर होकर पुनः प्रश्न किया—

"ऐसी स्थिति में आपका क्या निर्णय है ? मैं स्वयं तो कुछ निर्णय कर नहीं पा रहा हूँ, करना भी नहीं चाहता हूँ। मेरा निर्णय आप लोगों की सम्मति पर निर्भर करता है।"

"महाराज ! जब अपने अभियोग के विरुद्ध में वह कुछ भी नहीं कहता, तब हम यह भी नहीं कह सकते कि

निरपराध है। अपराधी वह हो, और सच कहे, तब तो हम प्रजा की ओर से उन्हें क्षमा करने की आपसे प्रार्थना भी करते. किन्तु जब वह मौन है, तब हमारे पास कोई मार्ग ही नहीं है।"

"अर्थात् ऐसी स्थिति में उसे अपराधी मान लिया जाना चाहिए ?"

"और कोई मार्ग नहीं है, महाराज ! उसके मौन को हम उस पर लगाये हुए अभियोग की स्वीकृति ही मान सकते हैं।'

"ठीक है; तब मैं यही निर्णय दे सकता हूँ कि सुदर्शन ने पांच अपराध किए हैं। उसका पहला अपराध यह है कि उसने अपने पद, अपनी प्रतिष्ठा, अपने पर किये जाने वाले विश्वास के विरुद्ध कार्य किया है। उसने दूसरा अपराध यह किया है कि धर्म की आड़ ले कर, मुझे धोखा दिया। तीसरे वह अनुचित रीति से महल में आया। उसका चौथा भयंकर अपराध यह है कि उसने अपनी माता के समान महारानी का अपमान किया और उसका सतीत्व नष्ट करने का प्रयत्न किया। और उसका अन्तिम अपराध यह है कि उसने मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया। यह राजाज्ञा की अवहेलना है।

"अस्तु, आप सबकी सहमति से मैं सुदर्शन को अपराधी ठहराता हूँ और आज्ञा देता हूँ कि सुदर्शन को आने

पराधों के दण्ड-स्वरूप मृत्यु-दंड दिया जाय। उसे मृत्यु-
ड सूली पर चढ़ा कर दिया जाय।

"राज्य-नियम के अनुसार उसकी सारी सम्पत्ति राज्य-
ाेष में आनी चाहिये, किन्तु उसकी पूर्व सेवाओं को लक्ष्य
रखकर मैं विशेष आज्ञा देता हूँ कि उसकी सम्पत्ति
सके पुत्रों के लिए ही छोड़ दी जाय।

"यह मेरा अन्तिम निर्णय है, किन्तु मैं विशेष अनुग्रह
रता हुआ यह आज्ञा देता हूं कि यदि सूली पर चढ़ा दिये
ाने के पूर्व तक भी वह वास्तविक बात बता दे, अथवा
ह ज्ञात हो कि उस पर लगाया गया अभियोग मिथ्या है,
ो इस निर्णय पर पुनर्विचार किया जा सकेगा।"

"अब आप लोग अपने आवास को लौट सकते हैं"

महाराज को प्रणाम करके प्रतिनिधिगण उदास चेहरे
ाए लौट आये। उनकी विवशता उनके मुख पर स्पष्ट
कट थी। क्योंकि वे सब सुदर्शन को बहुत प्यार करते थे।

सुदर्शन की पत्नी मनोरमा असाधारण स्त्री थी। वह
वयं सदाचारिणी और धर्मनिष्ठ थी, तथा उसे अपने सदा-
ारी पति में अटूट विश्वास था।

उसने जब सुदर्शन पर लगाए गए अभियोग की बात
ुनी तो सुन कर एक क्षण के लिये भी उसने इस **अभियोग**
ी सत्यता पर विश्वास नहीं किया। उसके **मन में यह**
ाखण्ड विश्वास बना रहा कि उसके पति ऐसा

स्वप्न में भी नहीं कर सकते। उसे यह विश्वास भी बन रहा कि सत्य कुछ देर के लिए छिपाया जा सकता है, किन्तु सत्य को हमेशा के लिये कदापि छिपाया नहीं जा सकता।

बादल कुछ देर के लिये सूर्य को ढक सकते हैं, किन्तु सदा के लिये नहीं।

उसके पति पर अभियोग लगाया गया है, ठीक है, राहु कुछ समय के लिये सूर्य और चन्द्र को ग्रसित कर लेते हैं। महारानी के असत्य के राहु ने कुछ समय के लिये उसके पति के सदाचरण के तथा सत्य के सूर्य को ग्रसित कर लिया है, किन्तु अन्त में सूर्य प्रकाशित होगा ही। अन्त में सत्य उद्भासित होगा ही—यह अटल नियम है।

यह भी अटल है, सूर्य की भांति प्रकाशित है कि उसके पति पर लगाया गया अभियोग अवश्य ही सत्य की शक्ति से छिन्न-भिन्न होगा।

कोई साधारण स्त्री होती तो इस अभियोग की बात सुन कर हाहाकार करने लगती। किंतु हाहाकार से क्या कभी भी कुछ लाभ हुआ है? ऐसा करना समय और शक्ति को नष्ट करना है। यही विचार करके मनोरमा दृढ़ रही। उसने अपना समय व्यर्थ के विलाप में न लगा कर धर्म की आराधना में लगाना आरम्भ कर दिया।

अपने पुत्रों सहित सुदर्शन की पत्नी परमात्मा का स्मरण करने बैठ गई। अपने मन में उसने निश्चय कर लिया

कि वह अपने पति का मुख तभी देखेगी, जब उन पर लगाया गया यह कलंक मिट जायेगा।

मनोरमा ध्यान में बैठी थी। उसके परिवार के कुछ ईष्टजन तथा प्रजा के कुछ व्यक्ति उसके घर पर आए।

उनका विचार था कि वे मनोरमा को समझायेंगे कि जा कर सुदर्शन को समझाये और उससे सत्य बात जान ले।

घर पहुँच कर उन्होंने द्वारपाल से पूछा—

"सेठानी घर पर हैं?"

"जी।"

"उन्हें सूचित करो कि हम लोग उनसे मिलना चाहते हैं"

"क्षमा करें! स्वामिनी इस समय ध्यान में हैं।"

उन प्रतिनिधियों ने सोचा कि शायद सेठानी को अब उनके पति पर लगाये गये अभियोग की जानकारी नहीं हुई है, तभी वे ध्यान में बैठी हैं। अतः उन्होंने द्वारपाल से फिर कहा—

"अपनी स्वामिनी को सूचित करो कि हम लोग आए हैं, और उन्हें यह भी बतादो कि नगरसेठ पर अभियोग लगाया गया है।"

द्वारपाल ने शांति से उत्तर दिया—

"स्वामिनी को अभियोग की बात ज्ञात है।"

यह सुनकर उन सब लोगों को घोर आश्चर्य हुआ— अभियोग की बात सेठानी जानती हैं, और इ[illegible] ।न्त निश्चिन्त बैठी हैं! अद्भुत शक्तिशाली है [illegible]

उन्होंने एक बार फिर प्रयत्न किया, कहा—

"जा कर सेठानीजी से कहो कि यह समय धर्मध्यान में बैठने का नहीं है। इस समय उन्हें जा कर सुदर्शन को समझाना चाहिए। वे किसी की बात सुनते नहीं हैं, राजा की, मंत्रियों की, प्रजा के प्रतिनिधियों की—किसी की बात के उत्तर में वे अपने अभियोग के विरुद्ध कुछ बोलते नहीं हैं। अतः सेठानीजी को स्वयं उन्हें जा कर समझाना चाहिए। सेठानी को स्वयं भी यह विचार करना चाहिए कि यदि सुदर्शन ने सत्य बात नहीं बताई तो उन्हें मृत्युदण्ड दे दिया जायेगा, सेठानी विधवा हो जायेंगी, बच्चे अनाथ हो जाएंगे........"

द्वारपाल की आँखों में सुनते-सुनते आँसू आ गए। देवता के समान अपने स्वामी को वह प्राणों से भी अधिक प्यार करता था। वह तुरन्त अपनी स्वामिनी के पास चला गया।

और कुछ देर बाद वह उदास चेहरा लिए लौट भी आया।

लौटकर उसने रोते रोते ही कहा—

"श्रीमान् ! आपने जो कुछ कहा, वह मैंने स्वामिनी से कह दिया। किन्तु वे तो ध्यान में ऐसी लीन हैं कि कुछ उत्तर ही नहीं देतीं........"

निराश और दुःखी वे सब ईष्टजन सुदर्शन के घर से लौट आए।

सूली से सिंहासन

आत्मा की शक्ति अनन्त है। उस शक्ति को जान लेना और दृढ़ संकल्प के साथ प्रकट करना ही पुरुषार्थ है। केवल भारतवर्ष ही नहीं, संसार में आज तक जितने महापुरुष हुए हैं, उनकी महानता का यही रहस्य है कि उन्होंने अपनी ही आत्मा में स्थित उस अनन्त और अपराजेय शक्ति को पहचाना और अपने संकल्प के बल से उसे प्रकट किया।

शक्ति को पहचानना विवेक हुआ। विवेक के साथ पुरुषार्थ आया और व्यक्ति महान् बन गया।

हमारे चरित्रनायक सुदर्शन ने अपनी इस शक्ति को पहचान लिया था। वह अच्छी तरह यह समझता था कि संसार व्यर्थ है। सार्थक और अव्यर्थ जो है, वह आत्मा का लोक है। यही कारण था कि उसने दृढ़ संकल्प कर लिया था कि प्राण रहें या जांय, सत्य को नहीं छोड़ूँगा, धर्म को नहीं त्यागूँगा।

संसार का क्षेत्र भौतिकता का क्षेत्र है। वह क्षणस्थायी है। आज है और कल नहीं रहता। जो सनातन है, इसलिए जो सत्य है, वह आध्यात्मिकता का, आत्मा का क्षेत्र है। सुदर्शन की दृष्टि उसी ओर केन्द्रित हो चुकी थी।

सुदर्शन को सूली पर चढ़ाने का समय और स्थान निर्धारित कर दिया गया था। राजा की आज्ञा से इसकी घोषणा नगर में कर दी गई थी। सुदर्शन के अपराध और उस अपराध के लिए निर्धारित भीषण दंड—मृत्युदंड की घोषणा को सुन कर सारे नगर में हाहाकार मच गया। प्रत्येक नगर निवासी को यह अनुभव होने लगा कि आज वह अनाथ हो जायगा। आज चम्पानगरी अनाथ हो जायगी।

अब कौन होगा, जो दीन-दुखियों के कष्ट की चिन्ता करेगा? कौन होगा जो राज्य के अनाथ और असमर्थ व्यक्तियों के लिए अपने आँसू और पसीना बहाएगा? सुदर्शन नहीं रहेगा तो अब कौन रहेगा, जो नगर के लिए एक आशा-दीप के समान होगा?

अन्धकार.............. सघन अन्धकार ही क्या अब शेष रह जायगा?

ऐसे ही विचार अब प्रत्येक व्यक्ति के मन में हाहाकार मचा रहे थे।

किन्तु उपाय नहीं था। एक घोर विवशता थी, जिसने नागरिकों के जीवन को जड़ कर दिया था। नगर-निवासी दुःखी थे, मन्त्रि-परिषद् उदास थी, राजा विवश और चिन्तित था। किन्तु नहीं था—कोई उपाय नहीं था, किसी के पास कोई उपाय नहीं........

क्योंकि सुदर्शन का मौन अखंड था।

सुदर्शन को सूली के योग्य वस्त्र पहना कर बाजार में से होकर सूली के लिए नियत स्थान पर ले जाया जाने लगा। सुदर्शन के आगे-आगे वह शोकसूचक वाद्य अपनी करुणध्वनि में बज रहा था, जो प्रत्येक ऐसे अवसर पर बजाया जाता था। उस वाद्य की वह ध्वनि सुन कर ही नगरभूमि और आकाश क्षणभर के लिए अवसन्न हो गये और फिर जैसे वे घोर पीड़ा से चीख उठे। सुदर्शन को सूली के वस्त्रों में चला जाता देखकर देखने वालों के कलेजे फट गए........

धीरे-धीरे सुदर्शन के पीछे एक झुंड इकट्ठा हो कर चलने लगा। यदि लोगों के चेहरे उदास और दुःखी न होते तो शायद ऐसा प्रतीत होता जैसे किसी महावीर की विजययात्रा हो रही हो। सुदर्शन के चेहरे पर तो ठीक वही भाव था। शान्त और संकल्पवान उसके चेहरे से एक आलौकिक आनन्द का प्रकाश झर रहा था।

लोग तरह-तरह की बातें विचार रहे थे और कह रहे थे कोई कहता था कि यह अन्याय है, सुदर्शन जैसे महापुरुष को यह दण्ड देना स्वयं राजा का ही अपमान है। कोई कहता था कि सुदर्शन भूल कर रहा है। उसे सत्य का उद्घाटन कर देना चाहिए। कोई कहता था कि अब सुदर्शन के स्त्री-बच्चों का क्या होगा ? केवल उनका ही नहीं, राज्य के अन्य अनेक परिवारों का क्या होगा, जिन्हें सुदर्शन पिता की भाँति ही पाला करता था।

इन्हीं विचारों के बीच सुदर्शन धीरे-धीरे निश्चित स्थान की ओर बढ़ता जा रहा था। स्वयं उसके मस्तिष्क में केवल एक ही विचार था—माँ का अपमान नहीं होने दूंगा।

'विजययात्रा' के शीर्ष पर सबसे आगे-आगे चलता हुआ सुदर्शन जब अपने महल के सामने से गुजरने लगा, तब सैनिक वहाँ रुक गए। उन्होंने नगरसेठ से प्रार्थना की—

"नगरसेठ ! यह आपका महल है। थोड़ा रुक कर अपने स्त्री-बच्चों से अन्तिम भेंट तो कर लीजिए।"

सुदर्शन मौन बने वहीं रुक गए।

कुछ क्षण बिलकुल शान्ति तथा प्रतीक्षा में गुजर गए।

किन्तु महल से बाहर सुदर्शन से मिलने के लिए कोई भी नहीं निकला। न उसके बच्चे और न ही उसकी पत्नी मनोरमा।

मनोरमा का दृढ़ संकल्प था—अपने पति का मुख तभी देखूँगी, जब उन पर लगा हुआ कलंक मिट जायगा। और उस कलंक को मिटना ही चाहिए। यदि सत्य का अस्तित्व है, धर्म का अस्तित्व है, तो ऐसा हो नहीं सकता कि उसके चरित्रवान पति पर लगाया हुआ असत्य का कलंक दूर न हो।

मनोरमा नहीं आई। यह देखकर लोगों के हृदय नए सिरे से विदीर्ण हो गए। क्या अन्तिम समय, अन्तिम बार भी पत्नी अपने पति से और पुत्र अपने पिता से नहीं मिलेंगे ? हे विधाता ! तेरी गति कितनी विचित्र है !

सुदर्शन के चेहरे पर एक भी रेखा परिवर्तित नहीं हुई। वैसे ही अखण्ड शान्ति धारण किए हुए वे आगे बढ़ गए।

सूली के स्थान पर पहुँचकर राज्य-कर्मचारियों ने सुदर्शन से कहा—

"नगरसेठ ! अब यह अन्तिम अवसर है। महाराजा का तथा सारी प्रजा का यह आग्रह है कि आप अब भी सच्ची घटना को प्रगट कर दें। हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप अपना मौन भंग करें।"

एक, दो और तीन वार यही प्रार्थना दोहराई गई, किन्तु सुदर्शन का मौन भंग नहीं हुआ।

भीषण और तीखी धार वाली सूली सूर्य की किरणों में चमक रही थी। ऐसा प्रतीत होता था कि जीवन के मर्म को भेद डाल कर उसे विनष्ट कर देने के लिए मृत्यु ने अपना सबसे तीक्ष्ण शस्त्र तैयार कर रखा हो। चारों ओर जन-समुदाय फैला हुआ हाहाकार कर रहा था और सिसक रहा था। देखने वालों की दृष्टि एक बार अपने प्रिय नेता नगर-सेठ सुदर्शन पर जाती थी और एक बार उस चमचमाती हुई तीक्ष्ण सूली की नोंक पर और फिर वह दृष्टि आंसुओं की धारा में पिघल कर बह जाती थी।

अन्त में दंडाधिकारी ने सुदर्शन से कहा—

"मान्य नगरसेठ ! हम विवश हैं। अब महाराज की आज्ञा के अनुसार हमें आपको मृत्युदण्ड देना ही पड़ेगा।

अस्तु, आप अपने अन्तिम समय में अपने इष्टदेव का स्मरण कर लें।"

दण्डाधिकारी का यह कथन सुनकर सुदर्शन ने सागारी संथारा ले लिया। परमपिता से उन्होंने अपने मन ही मन कहा—

'परमात्मन्! संसार के सभी जीव मेरे मित्र हैं। मुझे किसी से राग नहीं, किसी से द्वेष नहीं। मेरे मन में किसी के प्रति कोई कटुभावना नहीं, कोई वैर नहीं। अठारह पापों का, तीन करण तथा तीन योग से मैं त्याग करता हूँ। महारानी अभया माता के प्रति भी मुझे किंचित् मात्र भी वैर नहीं। बल्कि मैं तो उन्हें अपना उपकार करने वाली ही मानता हूँ। उन्हीं के कारण आज मुझे अठारह पापों का तीन करण, तीन योग से त्याग करने का सुयोग मिला है। विश्व के सभी जीव सुखी हों।'

इस प्रार्थना के पश्चात् सुदर्शन ने एकाग्र हो कर नवकार महामंत्र का ध्यान किया। उनकी आत्मा उस ध्यान में लीन हो गई, इस देह के अस्तित्व को सम्पूर्णरूप से भुला कर...

सुदर्शन ने जब परम एकाग्रता से नवकारमंत्र का ध्यान किया, तब उसकी अनन्त शक्ति से उसी क्षण देवताओं के आसन काँप उठे। देवताओं ने अपने अवधिज्ञान द्वारा इसका कारण देखा—भूलोक में परम तपस्वी, परम चरित्रवान सुदर्शन को अकारण ही सूली पर चढ़ाया जा रहा है।

तत्क्षण देवताओं ने निश्चय किया—जिसके हृदय में सार के किसी जीव के प्रति वैरभाव नहीं, जिसके हृदय में वकार मंत्र का ऐसा अखण्ड, ऐसा एकाग्र ध्यान है, जिसने ाज तक कोई भी पापकर्म नहीं किया, उस सुदर्शन की क्षा हमें करनी होगी..................

सुदर्शन का ध्यान अखण्ड था। इष्ट-स्मरण के लिये दया गया समय समाप्त होने पर अधिकारियों ने सुदर्शन ो सूली पर चढ़ाने के लिए उठाया। यह देखकर आकाश ीर भूमि जनता की चीत्कार से गूंज उठे.... ....

किंतु सहसा ही वह हाहाकार और चीत्कार एक ही क्षण ं समाप्त हो गया। लोग विस्मित हो कर फटे हुए नेत्रों से खते रह गए—

कि जव-अधिकारियों ने सुदर्शन को सूली पर वैठाया, ाव उसी क्षण किसी अलौकिक अदृश्य शक्ति से वह सूली ुवर्ण का एक झिलमिलाता हुआ सिंहासन वन गई। आ-काश से फूल वरसने लगे............

सुदर्शन उस सिंहासन पर उसी शांतमुद्रा में वैठे थे। ेवता उनके दोनों ओर चंवर डुला रहे थे—अद्भुत दृश्य था! अद्भुत घटना थी! लोग अव तक विस्मित और त्रिज-ड़ित वने हुए फटी आंखों से यह देख रहे थे। उन्हें कुछ समझ ही नहीं आ रहा था कि जो कुछ वे देख रहे हैं, वह स्वप्न है या सत्य? वे सो रहे हैं या जाग रहे हैं? वे कहाँ हैं? यह क्या हुआ?

विस्मय के साथ सबके चेहरे पर एक अवर्णनीय हर्ष भी था, किंतु अब तक वह भी जड़ित बना हुआ था।

इस स्तब्धता को वेधता हुआ देवताओं का स्वर उठा—

"सुदर्शन की जय हो ! शील, धर्म और चरित्र का पालन करने वाले सच्चे सत्पुरुष सुदर्शन की जय हो !

"सुदर्शन ! आपके समान धर्म और चरित्र का दृढ़ता से पालन करने वाले महापुरुषों के प्रताप से ही हम देवताओं के आसन अकम्पित हैं। आपने एक महान् आदर्श हम देवताओं के समक्ष भी प्रस्तुत किया है, आपको सहस्र-सहस्र साधुवाद ! आपकी सदा जय हो !"

अब जनता की संज्ञा लौटी, और उस संज्ञा के लौटते ही सारा आकाश सुदर्शन की जय ध्वनि से गूंज उठा। हर्ष का एक समुद्र ही जैसे उफन पड़ा।

सुदर्शन की जय का महाघोष उस स्थान से उठ कर, आकाश को गुंजाता हुआ महाराजा दधिवाहन के विशाल राजप्रासादों से जा टकराया.......

महाराजा दधिवाहन तत्क्षण अपने रथ पर बैठकर उस स्थान पर वायु-वेग से उड़ते हुए आए।

आ कर जो दृश्य उन्होंने देखा, उसे देखकर वे धन्य हो गए। जन्म-जन्म के पुण्यों का फल जैसे उन्हें उस क्षण प्राप्त हो गया। उनकी आंखों में सुदर्शन के प्रति आदर और स्नेह

के कारण आँसू आ गए। गद्गद स्वर से, हाथ जोड़ कर उन्होंने सुदर्शन से कहा—

"हे महापुरुष ! हे देवतुल्य ! हे सुदर्शन ! हम अज्ञानियों को क्षमा करो। मैं ही अन्धा हूँ, मेरा ही अपराध है कि मैं सत्य को पहचान नहीं सका।"

"किन्तु सत्य को तो प्रकट होना ही था, वह हुआ। आज मेरे हर्ष की कोई सीमा नहीं है। आज मेरे समान गौरववान कोई अन्य राजा इस भूमि पर नहीं है। क्योंकि केवल मेरे ही राज्य में आपके समान एक देवता-पुरुष निवास करता है। सुदर्शन ! नगरसेठ ! नगर के प्राण ! मुझे क्षमा करो।"

राजा दधिवाहन अपने हृदय के सच्चे उद्गार इस प्रकार प्रकट कर रहे थे कि उन्हें देखकर सुदर्शन उनका सम्मान करने के लिए सिंहासन से नीचे उतरने लगे। किन्तु राजा ने उन्हें सिंहासन से नीचे उतरने नहीं दिया। वे बोले—

"सुदर्शन ! सिंहासन से नीचे मत उतरो। तुम्हारा वही स्थान है। आज ही तो यह अवसर आया है कि जब हम तुम्हें अपने सच्चे स्वरूप में देख पा रहे हैं। हमें अपनी आँखों को तृप्त कर लेने दो.........."

राजा देखता रहा, जन-समुदाय अतृप्त नेत्रों से निहारता रहा उस शोभा को—सूली कहीं नहीं थी। एक झिल-मिलाता हुआ स्वर्ण-सिंहासन था, जिस पर सुदर्शन अपने

अद्‌भुत तेज-सहित बैठे हुए थे। आकाश से फूल बरस रहे थे। और देवता सुदर्शन को चंवर डुला रहे थे........

कुछ देर बाद सुदर्शन की पत्नी मनोरमा भी अपने पुत्रों सहित वहाँ आई। उन्हें देखकर जनसमुद्र ने फट कर राह दे दी और उस धर्मपरायणा, पतिपरायणा महिला की जय-ध्वनि से दिशाओं को गुंजा दिया।

मनोरमा अपने पति के सामने आई। हाथ जोड़ कर उसने अपने पति को प्रणाम किया और अनिमेष नेत्रों में प्रसन्नता का सागर लिए वह उन्हें एकटक देखती रह गई। सुदर्शन ने भी अपनी पत्नी को देखा। उनके चेहरे पर एक मुस्कान थी, नेत्रों में स्नेह की घटाएं।

जनता के आग्रह पर राजा ने मनोरमा से प्रार्थना की-

"आप धन्य हैं। आपकी सत्य और धर्म में अटूट निष्ठा को धन्य है। मुझे क्षमा कीजिए, मैं अज्ञानी हूँ। और आपका जो उचित स्थान है उसे ग्रहण कीजिए, सारी प्रजा की ओर से मैं प्रार्थना करता हूँ।"

मनोरमा को राजा ने सुदर्शन के समीप सिंहासन पर बैठा दिया। तब उन दोनों की जय से एक बार आकाश फिर गूंज उठा।

मुक्ति की राह पर

महाराजा दधिवाहन अपनी मंत्रिपरिषद् तथा अन्य गण्यमान्य नगरजनों के साथ सुदर्शन के घर तक आए। मनोरमा ने सबका यथोचित सत्कार किया।

विदा से पूर्व महाराजा ने सुदर्शन से कहा—

"नगरसेठ! ईश्वर की कृपा से आपको किसी वस्तु का अभाव नहीं है। किन्तु मेरी इच्छा है कि आपको इस प्रसन्नता के दिन की स्मृति में कुछ न कुछ भेंट अवश्य दूँ। कहिए, मैं आपको क्या अर्पित करूँ?"

सुदर्शन ने महाराजा की बात सुन कर उत्तर दिया—

"राजन्! परमात्मा तथा आपकी कृपा से सचमुच मुझे किसी वस्तु का अभाव नहीं है। अभाव असन्तोष में से आता है। मुझे असन्तोष है नहीं। इसलिए मैं क्या कह सकता हूँ? आपकी कृपा ही मेरे लिए सब कुछ है।"

"यह तो ठीक है, सुदर्शन! फिर भी आज मैं कुछ न कुछ तो आपको देना ही चाहता हूँ, अपने ही सन्तोष के लिए। वचन देता हूँ कि आप जो कुछ भी मांगेंगे, अवश्य

दूँगा। चाहे आप मेरा राज्य अथवा मेरा जीवन ही क्यों न माँग लें।" राजा ने आग्रह किया।

तब सुदर्शन ने राजा के आग्रह को देख कर क्षणभर विचार करके कहा—

"महाराज ! यदि आपकी यही इच्छा है कि मैं कुछ न कुछ अवश्य माँगूँ, तो माँगता हूँ। मैं एक ही बात आपसे चाहता हूँ कि इस प्रसँग को लेकर आप अभया माता से कुछ न कहें, उन्हें क्षमा कर दें तथा उनसे रुष्ट भी न रहें। आप देना ही चाहते हैं तो मुझे यही दीजिए। अज्ञानवश उनसे जो भूल हुई है, वह भुला दी जानी चाहिए।"

सुदर्शन की यह माँग अप्रत्याशित थी। किसी को विचार भी नहीं आ सकता था कि इतने बड़े अपराधी के लिए भी सुदर्शन के हृदय में इतनी करुणा तथा क्षमा होगी। सब विस्मित हुए। राजा ने क्षणभर विचार किया और फिर कहा—

"सुदर्शन ! तुम धन्य हो, सच्चे महापुरुष हो। उचित तो यही था कि अपराधी को कठोर से कठोर दंड दिया जाता। किन्तु तुम्हारी उदारता महान् है, और मैं वचनबद्ध हो गया हूँ। अस्तु, जैसा तुम चाहते हो, वही होगा। मैं महारानी को क्षमा कर दूँगा, बल्कि उनसे इस प्रसंग को ले कर कोई चर्चा भी नहीं करूँगा।"

सुदर्शन को यह वचन देने के बाद महाराजा अपने महल को लौट गए।

उधर महारानी अभया स्वयं अपनी ही आत्मा द्वारा धिक्कारित हो कर बेचैन थीं। जब से उन्होंने आज की घटना सुनी थी, सुना था कि सुदर्शन को मृत्यु के मुख में ले जाने वाली सूली देवताओं के प्रभाव से सिंहासन बन गई, तब से उन्हें अपनी आँखों के सामने मृत्यु नाचती हुई दिखाई पड़ने लगी थी। उन्होंने जान लिया था कि अब कहीं शरण नहीं है। उनके पाप पर से पर्दा उठ गया है और वह संसार के सामने प्रगट हो गया है। निश्चित है कि अब उन्हें इस घोर अपराध के दंडस्वरूप मृत्यु का आलिंगन करना होगा। वे महाराजा दधिवाहन के न्याय को खूब अच्छी तरह जानती थीं।

कदाचित् किसी कारण से यदि महाराजा उन्हें क्षमा भी कर दें, तब भी अब यह उनके सम्मान का प्रश्न था। किस मुँह को लेकर अब वे लोगों के सामने आ सकती थीं? कौन नहीं जानता कि महारानी ने कितना बड़ा पाप किया है?

नहीं, अब जीवन सम्भव नहीं है। सारे संसार द्वारा मन ही मन अपमानित होकर वे जीवित नहीं रह सकतीं।

यह विचार करके महारानी ने स्वयं ही मृत्यु का आलिंगन कर लेने का निश्चय कर लिया। उन्होंने आत्म-हत्या कर ली।

रानी की धाय पंडिता ने भी जब देखा कि पाप का घड़ा फूट गया है और महारानी ने आत्महत्या कर ली है,

तब वह भी चुपचाप महल और राज्य को छोड़ कर भाग खड़ी हुई।

महाराजा ने राजमहल में आ कर दासियों को आज्ञा दी–"महारानी अभया को हमारे पास भेज दो। उनसे कहो कि सुदर्शन के प्रसंग को ले कर वे कोई संकोच मन में न करें। उस घटना को उन्हें भुला देना चाहिए।"

दासियाँ महारानी के महल में गई और उन्होंने वहाँ जा कर जो दृश्य देखा होगा, उससे पाठक परिचित हो चुके हैं। महल में महारानी नहीं, उनका शव ही था।

दासियों ने डरते-डरते महाराज को सूचना दी। महाराज इस सूचना को सुन कर विचार में डूब गए। उन्होंने सोचा—पाप का अन्त और हो भी क्या सकता है?

× × ×

सब लोगों के चले जाने के बाद जब सुदर्शन को एकान्त प्राप्त हुआ, तब उसने विचार किया—

सांसारिक दृष्टि से विचार करूँ तो मेरे पास सब कुछ है। घर-परिवार है। धन-सम्पत्ति है। लोक में प्रतिष्ठा है। यौवन और स्वास्थ्य है। किन्तु क्या यही सब कुछ है? क्या यह सदा रहने वाला है? नहीं, यह तो इस संसार के साथ यहीं रह जाने के लिए है। जीवन को तो आगे बढ़ जाना है। आत्मा का लोक इस संसार से अलग है, आगे है, महानतर है, सनातन है, मेरा वही तो स्थान है। मुझे वहीं तो जाना है........

तब जहाँ मुझे हमेशा के लिए रहना नहीं, वहाँ-से जितनी जल्दी संभव हो, चल देना ही उचित है। इस संसार में रह कर आत्मा अनेक प्रकार के माया-जाल में फंसती चली जाती है। विवेकशील व्यक्ति को इससे यथाशीघ्र मुक्त होना चाहिए........

यही विचार सुदर्शन के मस्तिष्क में बादलों की तरह उमड़-घुमड़ कर आते चले गए और अन्त में उन्होंने निश्चय कर लिया कि जिस संयम का स्वीकार उन्होंने कुछ समय के लिए किया था, अब उसे हमेशा के लिए अंगीकार कर लेना चाहिए।

निश्चय पर पहुँच कर उन्होंने अपनी पत्नी को बुला कर कहा—

"प्रिये ! संसार आसार है। सार जहाँ है, वहाँ हमें जाना चाहिए। हमने इस जीवन के सुख को, यदि उसे सुख ही कहा जाय, तो काफी भोग लिया है। अब हमें अपनी आत्मा के कल्याण का विचार भी करना चाहिए। अस्तु, मैंने निर्णय किया है कि अब संयम को स्वीकार कर लूं और मुक्ति की राह पर आगे बढ़ जाऊँ। इसमें तुम्हारी सम्मति की आवश्यकता है।"

मनोरमा विवेकशील महिला थी। पति के कथन पर उसने गंभीरता से विचार किया और उत्तर

"प्रियतम ! आपका कथन सत्य है। [illegible] ।ह क
कहीं है। इस मोह में पड़े रह कर [illegible] । हम

आँचल में शेष रह सकता है। अतः मैं आपके मार्ग में बा
नहीं बनूंगी। आपका निश्चय शुभ है।"

पत्नी की ओर से यह सम्मति पा कर सुदर्शन को हार्दि
सन्तोष और प्रसन्नता हुई। उन्होंने दीक्षा लेने के पूर्व अ
घर की यथावश्यक व्यवस्था कर देने की तैयारी आर
ी।

× × ×

शीघ्र ही सारे नगर में यह समाचार फैल गया
नगरसेठ सुदर्शन गृह-त्याग करके दीक्षा ग्रहण कर रहे
लोगों को फिर से सुदर्शन के वियोग का दुःख होने ल
मृत्युदंड से बच कर सुदर्शन अब संसार-त्याग कर रहे
लोगों के लिए तो सुदर्शन चले ही जा रहे थे। किन्तु उन
विचार किया कि कल्याण के पथ पर जाते हुए व्यक्ति
रोकना नहीं चाहिए, और यह विचार करके लोगों ने कि
प्रकार धैर्य धारण किया।

राजा दधिवाहन ने भी जब देखा कि अब सुदर्शन
मन संसार में लग नहीं सकता, तब उन्होंने भी अन
आज्ञा दे दी और बड़ी धूमधाम से सुदर्शन का दीक्षा-म
त्सव किया। दीक्षित हो कर, संयम धारण करके, लोगों
धर्म का माहात्म्य समझा कर सुदर्शन चम्पानगरी से वि
कर गए।

नगरसेठ सुदर्शन अब सुदर्शन मुनि हो गए थे।

विचरते-विचरते सुदर्शन मुनि एक स्थान से दूसरे स्थान ार होते हुए एक वार पाटलिपुत्र पहुँचे। वे मार्ग पर चल हे थे कि उनके सामने एक स्त्री किसी स्थान पर जाती हुई ाई और मुनि को देख कर वह ठिठक कर खड़ी हो गई। ुनि ने उस स्त्री को देखा और आंखें नीची करके वे आगे ढ़ गए। किन्तु मुनिवेश में भी उस स्त्री ने सुदर्शन को हचान लिया।

इस पहचान के साथ ही उस स्त्री के हृदय में वैर और ोध की ज्वाला सुलग उठी। सच है, नीच व्यक्तियों का वभाव वड़ी कठिनाई से ही वदल सकता है। उस स्त्री ने ुदर्शन मुनि को पहचानते ही स्मरण किया कि इन्हीं के ारण उसे नाना प्रकार के कष्ट सहने पड़े है।

उस स्त्री को सुदर्शन मुनि के कारण चम्पानगरी से भाग र पाटलिपुत्र आना पड़ा था और यहाँ आकर उसे एक श्या की सेविका वन कर रहना पड़ रहा था। सुदर्शन मुनि ः कारण ही उस स्त्री की पुत्रीतुल्य रानी को आत्महत्या रनी पड़ी थी ?

पाठकों को यदि पूर्वकथा का विस्मरण नहीं हुआ है तो समझ गए होंगे कि यह कुटिला स्त्री कौन थी ?

स्त्री के स्वरूप में यह नागिन पंडिता थी।

सुदर्शन जिस सूली पर चढ़ाए जाने वाले थे, जव वह सहासन वन गई, जव सत्य सूर्य की तरह प्रगट **हुआ और** भया तथा पंडिता के पाप का घड़ा भर कर **फूट गया**—

तब अभया ने आत्महत्या कर ली थी और पंडिता वहाँ से भाग कर पाटलिपुत्र आ गई थी। यहाँ आ कर वह अपने ही कुटिल स्वभाव के अनुकूल एक वेश्या के यहाँ अब दासी थी। अचानक जब उसने सुदर्शन को मुनि के वेश में विचरते हुए वहाँ देखा, तब उसके हृदय में बदला लेने की भावना जागृत हुई।

पंडिता शीघ्रता से अपनी स्वामिनी वेश्या के पास आई और चूंकि वह स्वयं तो कुछ कर नहीं सकती थी, इसलिए अपनी रूपवती और यौवनवती स्वामिनी को उभारने लगी--

"स्वामिनी ! विस्मय की बात है। वैसे तो संसार में ऐसे महापुरुषों का होना असम्भव ही प्रतीत होता है जो सुन्दर तथा युवती नारी के आकर्षण से खिंच न जाए, किंतु कोई कोई पुरुष तो ऐसे होते ही हैं, जिन्हें कोई भी स्त्री अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती।

पंडिता की स्वामिनी वेश्या का नाम हरिणी था। वह सचमुच ही एक हरिणी के सदृश रूपवती भी थी। अपने ... का उसे गर्व भी था। इसके अतिरिक्त वह एक वेश्या थी। छल-कपट तथा त्रिया-चरित्र उसने अपनी जन्मघुट्टी में प्राप्त किया था। पंडिता की बात सुन कर उसने उत्तर दिया—

"पंडिता ! तू नासमझ है। संसार में ऐसा कोई पुरुष है ही नहीं, जो सुन्दर, यौवनवती तथा त्रिया-चरित्र में कुशल कामिनी के आगे न झुक जाय।"

"मेरा अनुभव तो यह नहीं कहता। मेरा तो यही कहना है कि ऐसे पुरुष भी संसार में हैं, जिन्हें कोई स्त्री अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती।"

"तू भ्रम में है पंडिता !"

"तब क्या आपका यह कथन है कि ऐसे पुरुष का संसार में होना असंभव है, जो स्त्री के आकर्षण को विजित करके अपने चरित्र पर दृढ़ रह सके ?"

"बिलकुल ! और मैं यह बात चुनौती के साथ कह सकती हूं।"

कुटिला पंडिता धीरे-धीरे अपना जाल फैला रही थी। अब उसने सीधी चुनौती दी—

"स्वामिनी ! निरर्थक विवाद से क्या लाभ ? आपके कथन को तभी सत्य मान सकती हूँ, जब आप मेरे द्वारा बताए गए पुरुष को अपनी ओर आकर्षित कर लें।"

"अच्छा, तो यह बात है ? मुझे स्वीकार है। ला, बता कौन-सा है वह तेरा पुरुष, जिसके लिए तू कहती है कि वह स्त्री के आकर्षण से परे है ? किंतु ऐसा पुरुष न बताना, जो वृद्ध हो अथवा बालक ही हो।"

"नहीं स्वामिनी ! वह पुरुष न तो वृद्ध है, न बालक है। उसके समान रूपवान और स्वस्थ युवक आपको ढूंढे न मिलेगा। वह पुरुष पुरुषत्वहीन भी नहीं है, आपके विश्वास के लिए यह भी बताए देती हूँ, लेकिन मैं [illegible] हूँ, उस पुरुष को वश में करना जरा [illegible]

"देखा जायगा। तू उस पुरुष को मुझे बता तो सही; देखते-देखते उसे अपने वश में करके अपना सेवक न बनाऊं तो मेरा नाम भी हरिणी नहीं।"

लोगों को अपने कुटिल जाल में फंसाने में निष्णात पंडिता ने पाटलिपुत्र की सबसे रूपवती वेश्या हरिणी को सुदर्शन मुनि के संयम को भंग करने के लिए तैयार कर लिया। वह विचार कर रही थी कि किसी प्रकार यदि सुदर्शन का संयमभंग हो तो उसके जलते हुए कलेजे में कुछ ठंडक पड़े।

अवसर पा कर पंडिता ने हरिणी को बताया—

"वह देखो! मुनिवेश में वहां जो अत्यन्त रूपवान पुरुष जा रहा है, उसे पहचान लो। मैं उस पुरुष को पहचानती हूं। यदि आप उसे अपने वश में कर लेंगी, तभी मैं आपकी चुनौती को सफल मानूंगी। मेरा अनुभव है कि इस पुरुष को वश में करना संसार की किसी भी स्त्री के लिए असम्भव है।"

हरिणी ने ध्यान से देखा—हां, यह पुरुष है तो अत्यन्त सुन्दर, जैसे साक्षात् कामदेव। वह मन ही मन सुदर्शन मुनि पर, जो कि उस समय गोचरी लेकर अपने स्थान पर लौट रहे थे, मुग्ध भी हो गई। कुछ पल उन्हें एकटक देख कर उसने कहा—

"ठीक है पंडिता! अब मेरे रूप, यौवन तथा कौशल की परीक्षा ही होगी। मैं इस पुरुष के अभिमान को अवश्य ही

तोड़ूंगी; लेकिन तू यह तो बता कि तू इस पुरुष को कैसे जानती है ? यह है कौन ? और तू यह क्यों कहती है इसके विषय में कि इसे वश में करना असम्भव है ?"

पंडिता ने हरिणी के कुछ और समीप खिसक कर कहा—

"स्वामिनी ! आप पूछती हैं तो बताती हूँ। लेकिन यह एक गुप्त बात है। यदि प्रकट हो गई तो……"

"चिंता न कर, शीघ्र बता। मुझ पर भी अविश्वास करती है ?"

"नहीं, आप पर अविश्वास कैसा ? किंतु किसी से कहिएगा नहीं, अन्यथा मैं विपत्ति में पड़ जाऊँगी………"

"अच्छा बता, कह दिया, नहीं कहूँगी किसी से। तू कुछ बोल तो सही।"

"स्वामिनी ! यह पुरुष विख्यात चम्पानगरी का प्रसिद्ध नगरसेठ सुदर्शन है। अब तो इसने साधुधर्म अंगीकार कर लिया है। यह उस समय की कथा है, जब यह साधु नहीं बना था। तब मैं चम्पानगरी में वहाँ की महारानी अभया की धाय थी। महारानी अत्यन्त रूपवती व युवती थी। सुदर्शन नगरसेठ था और उस पर चम्पानगरी की प्रत्येक युवती स्त्री मोहित थी। इस पुरुष में आकर्षण ही ऐसा है………………"

पंडिता स्त्रियों के स्वभाव को पहचानने में कुशल थी। इतना कहते-कहते वह गौर से हरिणी के चेहरे पर उदित होते हुए मनोभावों को ताड़ रही थी।

और हरिणी के मन में सुदर्शन मुनि को देखने के बाद जो भाव उठ रहे थे, उन्हें पाठक जान चुके हैं।

अपने पिलाए विष का असर देखते हुए पंडिता ने आगे कहा—

"एक बार महारानी अभया ने अपनी किसी रानी से इस पुरुष के विषय में चर्चा की और बात ही बात में महारानी ने यह प्रतिज्ञा कर ली कि वे सुदर्शन को अपने रूप और यौवन से आकर्षित कर लेंगी और उनके साथ दाम्पत्य-सुख का भोग अवश्य करेंगी।

"क्या बताऊँ स्वामिनी ! महारानी ने अपने मन की यह अभिलाषा मुझे बताई। बड़ी कठिनाई से मैं इसे महारानी के महल में ले गई। महारानी ने अपनी सारी शक्ति लगा ली। वे इसके सामने सम्पूर्णरूप से समर्पित हो गईं। साम-दाम-दंड-भेद उन्होंने किस उपाय को काम में नहीं लिया ? किन्तु भगवान् जाने यह पुरुष किस धातु का बना है कि टस से मस नहीं हुआ।"

विष का प्रभाव अच्छी तरह से देखने के लिए पंडिता चुप ही गई। उसे चुप हुई देख कर आतुर हरिणी ने उत्सुकता से पूछा—

"फिर क्या हुआ ?

"एक लम्बी सांस पंडिता ने ली और आगे बताया—

"फिर क्या होना था ? यह सुदर्शन तो हिला ही नहीं और दुःख की मारी महारानी ने आत्महत्या करली......"

"आत्महत्या ?"

"हाँ स्वामिनी ! महारानी को मैंने अपनी बेटी की तरह पाला था। वह तो चली गई और मैं भाग कर यहाँ चली आई। आज इसे—इस सुदर्शन मुनि को देखकर मेरे मन में विचार आया कि क्या संसार में कोई ऐसी स्त्री नहीं, जो इसे वश में कर सके ?"

यह एक दूसरी चुनौती थी। स्त्री को अपने रूप का बड़ा अभिमान होता है। हरिणी को यह चुनौती भी तीखी लगी। उसने मन ही मन दृढ़ निश्चय कर लिया कि कुछ भी हो, इस पुरुष को वश में करना ही होगा........

× × ×

पंडिता ने जानबूझ कर हरिणी को यह नहीं बताया था कि किस प्रकार सुदर्शन को सूली का दंड दिया गया था और वह सूली सिंहासन बन गई थी। उसने ऐसा इसलिए किया था कि कहीं सुदर्शन की इस दृढ़ता और प्रभाव को जान कर हरिणी उसे वश में करने के प्रयत्न को त्याग न दे

अब हरिणी ने विचार करना [illegible] ।
सोचा कि महारानी अभया इन्हें [illegible]

रही होगी तो रही होंगी, वे क्या जानें कि पुरुष को कै वश में किया जाता है ? मैं तो इस कार्य में कुशल ए वेश्या हूँ। मैं देखते ही देखते इन्हें अपने वश में कर लूंगी

इस प्रकार स्वयं को आश्वस्त करके हरिणी ने अब य सोचा कि सुदर्शन को अपने घर लाया किस प्रकार जाय ? ये मुनिलोग किसी वेश्या के घर तो किसी भी प्रयोजन से जाते ही नहीं। इसी प्रकार एकान्त में किसी स्त्री से दिन के समय में भी नहीं मिलते. रात में तो मिलने का प्रश्न ही नहीं आता। तब कैसे उन्हें अपने घर बुलाया जाय ?

अन्त में हरिणी ने निश्चय किया—मैं एक श्राविका का वेष धारण करके, श्राविका के अनुकूल ही आचरण करके मुनि से प्रार्थना करूंगी कि वे मेरे घर आ कर आहार ग्रहण करें। इस रीति से वे अवश्य ही मेरे घर आ जाएंगे। बस एक बार वे मेरे घर आ जायँ, फिर तो मैं उन्हें अपनी ओर आकृष्ट किए बिना छोड़ूंगी ही नहीं ....

यह निश्चय करके हरिणी ने श्राविकाओं के व्यवहार रहन-सहन, बोलचाल आदि की जानकारी प्राप्त की। अच्छी तरह से इसका अभ्यास कर लेने के बाद, एक दिन वह मुनि के मार्ग में हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक खड़ी हो गई और मुनि के समीप आने पर उसने प्रार्थना की—

"महाराज ! मुझ श्राविका पर भी कृपा कीजिए, मुझे भी तारिए। मेरा घर समीप ही है, कृपया कुछ गोचरी ग्रहण कीजिए। मेरा नियम है कि मैं किसी साधु-महात्मा

को दान दिए विना भोजन ग्रहण नहीं करती हूँ। आज सौभाग्य से आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं, कृपा कीजिए।"

"महाराज ! किसी समय में पतित जीवन व्यतीत करती थी, किन्तु आप के समान ही साधु-महात्माओं की कृपा से अब मैं एक श्राविका का शुद्ध जीवन व्यतीत करती हूँ, अतः आपको मेरे यहाँ पधार कर भिक्षा ग्रहण करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। यदि आप नहीं पधारेंगे तो मेरा दुर्भाग्य! मुझे अपने नियम के अनुसार भूखी ही रहना पड़ेगा।"

सुदर्शन मुनि ने अपने सामने एक विनयशीला श्राविका को आहार ग्रहण करने के लिए प्रार्थना करते हुए देखा। वे तो सरलहृदय थे, शुद्ध भावना थी। उन्हें किसी छल या कपट का क्या अनुमान ? स्थान-स्थान से गोचरी ग्रहण करना उनका नियम था, अतः उन्होंने हरिणी की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। वे भिक्षा ग्रहण करने हरिणी के घर चले गए।

ज्यों ही मुनि ने हरिणी के घर में प्रवेश किया, दासियों ने हरिणी की आज्ञा से घर के द्वार वन्द कर दिए। द्वार वन्द किए जाते देख कर सुदर्शन मुनि समझ गए कि वे किसी छल-कपट में पड़ गए हैं। किन्तु शुद्ध हृदय वाले धीर पुरुष आई हुई आपत्ति से घवराते नहीं। उन्होंने विचार कि जैसे भी उचित होगा, इस आपत्ति से पार ही होगा।

द्वार बन्द हो जाने पर हरिणी वेश्या अपने वास्तविक स्वरूप में प्रगट हुई। अपने सौन्दर्य और यौवन का प्रदर्शन करती हुई वह मुस्कराकर कटाक्ष करती हुई बोली—

"पधारिये मुनिवर! अब संकोच किस बात का? आज मैं आपको अद्भुत दान दूंगी। देखिए, जरा गौर से देखिए, कंचन के समान मेरी इस सुन्दर काया को देखिए और छलकते हुए मेरे इस यौवन को देखिए। मैं यह सब आज आपको दान कर दूंगी। दान क्या करूंगी मुनिवर! मैं अपना सर्वस्व ही आज आपको समर्पित कर दूंगी। आप एक बार दृष्टि उठा कर मेरी ओर देखिए तो सही।"

सुदर्शन मुनि की दृष्टि भूमि पर थी और वे विचार कर रहे थे। उन्होंने समझ लिया कि यह नारी अज्ञान में है और मोहित है। धैर्य के अतिरिक्त अब अन्य मार्ग इससे बचने का नहीं है।

अस्तु, उन्होंने जहाँ वे खड़े थे, उस स्थान को अपने रजोहरण से स्वच्छ किया और ध्यान लगा कर वे उस स्थान पर बैठ गए।

हरिणी ने अनेक बातें ध्यानस्थ मुनि से कहीं। अनेक प्रकार से उसने यह प्रयत्न किया कि मुनि का ध्यान भंग हो, वे उसे देखें और उसकी ओर आकर्षित हों, किन्तु वह नहीं जानती थी कि वह व्यक्ति जो उसके सामने खड़े होकर ध्यानस्थ बैठा था, वह अपने संयम को पालने में वज्र की भाँति कठोर और हिमालय की भाँति अटल था।

हार कर हरिणी ने सोचा कि यह मुनि ऐसे तो कुछ सुनते नहीं, इन्हें राग-रंग से अपनी ओर आकर्षित करना चाहिए। नृत्य और संगीत में बड़ा आकर्षण होता है। देवता, पशु-पक्षी—सभी संगीत से प्रभावित हो जाते हैं, तब एक मनुष्य को तो उससे प्रभावित होना ही चाहिए।

मधुर संगीत की लहरें वातावरण में सिहरन उत्पन्न करने लगीं। हरिणी ने अनेक प्रकार की कामोद्दीपक राग-रागिनियाँ गाईं, किन्तु सुदर्शन मुनि के उग्र संयम के सामने उन्हें व्यर्थ ही जाना था और वे व्यर्थ ही गईं।

यह प्रयत्न भी निष्फल जाता देखकर हरिणी को बड़ा क्रोध आया। उसने सोचा कि यह मुनि जब किसी भी प्रकार से विचलित नहीं होते, तब उन्हें भूखा ही मरने देना चाहिए। देखती हूँ कि ये कब तक भूखे इस प्रकार से बैठे रहते हैं। भूख के आगे अच्छे-अच्छे शक्तिशाली व्यक्ति हार मान जाते हैं। इन्हें भी जब भूख सताएगी, तब ये अपना ध्यान भंग करेंगे और मेरी बात स्वीकार करने के लिए उन्हें विवश होना ही पड़ेगा।

यह विचार करके सुदर्शन मुनि को ध्यानस्थ छोड़ कर हरिणी वहाँ से चली गई।

किन्तु भूख से पराजित तो वह व्यक्ति होता है, जिसे जीवन से मोह हो। सुदर्शन मुनि को जीवन का कोई नहीं था। संयम और चरित्र उन्हें एक ही न जीवनों से बढ़कर प्रतीत होता था।

एक, दो और तीन दिन इसी प्रकार से व्यतीत हो गए। सुदर्शन मुनि निश्चल और एकाग्र होकर ध्यान में ही लीन रहे। बीच-बीच में हरिणी ने मुनि को विचलित करने के और भी अनेक प्रयत्न किए, किन्तु वे सब व्यर्थ गए।

चौथे दिन जब सूर्योदय हुआ तब उस पतिता वेश्या का हृदय भी परिवर्तित हो गया। सुदर्शन मुनि के संग के प्रभाव से उसके हृदय में ज्ञान की एक किरण उतरी। उसने विचार किया—

हाय ! मैं कैसी पापिष्ठा हूँ कि ऐसे शुद्ध और संत पुरुष को अपनी क्षुद्र वासना की क्षणमात्र की तृप्ति के लिए पतित करना चाहती हूँ और उन्हें इतना कष्ट दे रही हूँ ? जिस सुख की प्राप्ति मैं करना चाहती हूँ, अवश्य उस सुख से भी बढ़कर कोई सुख है, जिसकी प्राप्ति के विश्वास में ये मुनिराज इस सुख की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते।

मैंने भयंकर भूल की है। जिन पूज्य पुरुष की मुझे पूजा करनी चाहिए थी, उन्हें मैंने इस प्रकार से यातना दी है। अब मुझे अपनी इस भूल का सुधार करना चाहिए। जितना पाप मैं इस जीवन में कर चुकी हूँ, यदि संभव हो तो इस महापुरुष की कृपा से धोने का प्रयत्न करना चाहिए।

यह शुभ निश्चय करके हरिणी मन ही मन पश्चा

करती हुई सुदर्शन मुनि के चरणों के समीप आकर गिर गई और करुण स्वर में वोली—

"पूज्य मुनिवर ! मुझ पापिनी को क्षमा कर दीजिए। मैंने घोर पाप किया है। मैं अज्ञान में थी। किन्तु अब आपके निष्कलंक चरित्र के प्रभाव से मेरे हृदय में सत्य ज्ञान प्रगट हुआ है। मैं अपने अपराधों के लिए आपसे क्षमा माँगती हूँ।"

"मुनिवर ! आप महान् हैं। आपको मुझे क्षमा करना ही होगा। आप मुझे अपनी शिष्या स्वीकार करें अथवा नहीं, किन्तु मैं आपको अपना गुरु मानती हूँ और प्रण करती हूँ कि भविष्य में एक सच्ची श्राविका का जीवन धर्म-पूर्वक व्यतीत करूँगी।

"पूज्य गुरुदेव ! क्षमा आपका विशेष गुण है। मुझे क्षमा कीजिए और अपने स्थान को सुखपूर्वक पधारिये। द्वार मुक्त है।"

अपनी स्वामिनी को इस प्रकार प्रायश्चि ... तो
देख कर पंडिता के हृदय में भी परिवर्तन ...
का कलुष भी मिट गया। उसे भी अपने ... न
तब वह भी सुदर्शन मुनि के समक्ष ... वो

"पूज्य मुनिराज ! इस सारे ... मैं हूं
रानी अभया को मैंने ही आपके ...
सहायता दी थी और इस ... मैंने

साया था। मैं घोर पापिनी हूँ। किन्तु अब मुझे अपने पापों का ज्ञान हुआ है। मैं सच्चे हृदय से अपने अपराधों के लिए आपसे क्षमा माँगती हूँ। साथ ही प्रतिज्ञा करती हूँ कि अपना शेष जीवन मैं भी हरिणी बहिन की तरह धर्माचरण में व्यतीत करूँगी। कृपया अपना ध्यान खोलिये तथा सुखपूर्वक अपने स्थान को पधारिये।"

"माता ! मन में दुख न लाओ। जो कुछ हुआ उसे भूल जाओ और तुम्हारे हृदय में ज्ञान प्रकट हुआ है तो उसके सहारे जीवन को उन्नत बनाओ। मुझे तुममें से किसी पर कोई क्रोध नहीं है। प्रसन्नता ही है कि मुझे अपने संयम और धर्म में दृढ़ बनने का अवसर मिला। अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन करो और अपनी आत्मा का कल्याण करो।"

धर्म का उपदेश हरिणी और पंडिता को दे कर सुदर्शन मुनि उनके आवास से निकल कर चल पड़े। मार्ग में उन्होंने विचार किया—'इस शरीर के कारण अनेक लोगों को कष्ट होता है। कपिला को, तथा अभया की माता को कष्ट हुआ। उसके बाद इस हरिणी माता को कष्ट हुआ। संभव है, आगे जा कर भी किसी अन्य को व्यर्थ ही कष्ट में पड़ना पड़े। किसी को कष्ट न हो, यह विचार करके मैंने संयम धारण किया, किन्तु संयम लेने पर भी किसी को कष्ट हो, ऐसा अवसर आ ही जाता है। भिक्षा लेने के लिये ही मुझे किसी के घर जाना पड़ता है। अतः अब यही उचित है कि मैं किसी एकांत वन में जा कर तपश्चरण करूँ। शरीर को अब

तक रहना है, रहे। जब तक इसकी रक्षा वन में होगी, होगी; किन्तु भिक्षा के निमित्त अब मुझे नगर में भी नहीं आना है।'

यह महान् निश्चय करके सुदर्शन मुनि हरिणी के यहाँ से चल कर सीधे वन की ओर ही चले गए।

उस समय उन्हें कोई देखता तो उसे यही प्रतीत होता कि जैसे सब कुछ छोड़ कर साक्षात् त्याग चला जा रहा हो, निर्लिप्त हो कर, मोह से रहित होकर।



अन्तिम चरण—मुक्ति !

आत्मा शुद्ध हो, उसका उपादान कारण अच्छा हो, तो निमित्त कारण भी अच्छे वन जाते हैं और उन्नति में सहायक होते हैं।

सुदर्शन मुनि को अनेक अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में से गुजरना पड़ा। किन्तु उन सब परिस्थितियों का प्रभाव उनकी आत्मा को शुद्ध से शुद्धतर तथा उच्च से उच्चतर ही वनाता गया। उसका कारण यही था कि उनका उपादान कारण अच्छा था। उन्होंने कष्ट सहे, प्रतिकूल परिषह सहे, और उनसे अपनी आत्मा को और भी दृढ़, और भी वनाया।

सामान्य अथवा कमजोर आत्मा वाले व्यक्ति के लिये यह स्वाभाविक था कि वह इन अनुकूल तथा प्रतिकूल परिषहों में पड़ कर राग-द्वेष में लिप्त हो जाता, उसके पापकर्मों का वन्ध होता। किन्तु सुदर्शन मुनि का उपादान कारण अच्छा था, उनकी आत्मा सशक्त थी, अतः ये निमित्त उनकी उन्नति में ही सहायक हुए।

कल्याण की कामना करने वाले व्यक्ति को निमित्त कारणों की अच्छाई-वुराई देखने के स्थान पर अपनी

आत्मा की ही अच्छाई-बुराई की ओर दृष्टि रखनी चाहिये। सुदर्शन मुनि ने यही किया। जैसा भी निमित्त कारण उपस्थित हुआ, उन्होंने अपनी दृष्टि आत्मा की शुद्धता और पवित्रता पर ही रखी। परिणाम यह हुआ कि वे धीरे-धीरे कर्म-बन्धनों से मुक्ति की ओर बढ़ते गये।

और अब सुदर्शन मुनि एक एकांत, निर्जन वन में पहुँच गए। वहां जा कर उन्होंने योग्य स्थान खोज कर ध्यान लगाया। वे अब पूर्णतया अपना समय शुभ ध्यान में लगा देना चाहते थे।

किन्तु संयोग की बात है, सुदर्शन मुनि को अभी एक और कठिन परीक्षा में से गुजरना था।

जिस जंगल में सुदर्शन मुनि ध्यान लगा कर बैठे थे, उसमें महारानी अभया आत्मघात करने के बाद एक व्यन्तरी (निम्न कोटि की देवी) के भव में उत्पन्न हुई थी। इस व्यन्तरी ने ध्यानस्थ सुदर्शन को देखा। उन्हें देखते ही विभंग ज्ञान की सहायता से अपने पूर्वभव की घटना स्मरण हो आई।

उस घटना का स्मरण होते ही व्यन्तरी के हृदय में वैर की भावना बड़ी तीव्रता से उत्पन्न हुई। उसने विचार किया —पूर्वभव में मैंने इस पुरुष को अपना प्रेमी बनाना चाहा था, किन्तु इस निर्दय ने मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं की थी। परिणामस्वरूप मुझे आत्महत्या करके मरना पड़ा और

नीच व्यन्तरी के भव में उत्पन्न होना पड़ा। अब फिर से अवसर मिला है, मुझे इससे अपना बदला लेना चाहिए।

इसके अतिरिक्त पूर्वभव की मेरी इच्छा भी अपूर्ण रह गई थी। यदि मैं अब भी इसे अपने पर आसक्त कर सकूं तो अपनी उस अतृप्त इच्छा को पूर्ण कर सकती हूं।

यह विचार करके उसने सुदर्शन मुनि को अपनी ओर आसक्त करने का निश्चय कर लिया। एक बार उसके मन में यह भी विचार आया कि जब इस पुरुष ने गृहस्थजीवन में ही अपने संयम को नहीं त्यागा, तब अब तो इसने साधु धर्म स्वीकार कर लिया है, अब यह क्या मानेगा? किन्तु फिर भी उसने सोचा कि अब मैं एक व्यन्तरी हूँ, मेरी शक्ति अब बढ़ गई है, मैं अनेक रूप धारण कर सकती हूँ, इसलिए संभव है कि मैं इसे विचलित कर सकूं। यह विचार करके वह सुदर्शन के समीप आई।

सत्य है, अज्ञान में पड़ी हुई आत्मा सत्य को नहीं पहचान पाती। तभी तो उस व्यंतरी के मन में सुदर्शन मुनि को विचलित कर सकने की आशा जागृत हुई।

वह आशा केवल एक दुराशामात्र थी।

वह आशा केवल एक असंभव वस्तु की आशा थी।

सुदर्शन का अपने संयम से भ्रष्ट होना संभव ही नहीं था।

व्यन्तरी सुदर्शन मुनि के पास आ कर यह प्रयत्न करने लगी कि वे अपना ध्यान भंग कर दें और उसकी ओर आ

र्पित हों। मुनि ध्यान में लीन थे और लीन हो बने रहे। व्यंतरी ने एक परम सुन्दरी स्त्री का रूप धारण किया। वह मुनि से बोली—

"हे मुनिवर ! उठिए, अपने ध्यान को समाप्त कीजिए। आपके तप के फलस्वरूप मैं आपको प्राप्त हुई हूँ। आपकी सेवा के लिए उपस्थित हुई हूँ। अपने तप के फल स्वरूप प्राप्त हुई मुझ जैसी परमसुन्दरी नारी का भोग कीजिए और अपने जीवन को सफल कीजिए।"

इसी प्रकार की अनेक बातें व्यन्तरी ने मुनि से कहीं। किन्तु उनका क्या असर होना था? व्यन्तरी के सारे प्रयास निष्फल गए। मुनि उस व्यन्तरी की बातें सुन कर यही विचार करते रहे—परीक्षा का एक और अवसर इस माता ने मुझे दिया है। ठीक है, अग्नि में से तप-तप कर ही सुवर्ण कुन्दन बनता है। इस माता का भी मुझ पर उपकार ही होगा। मुझे इस परीक्षा में से उत्तीर्ण हो कर निकलना है।

व्यंतरी सुदर्शन मुनि को विचलित करने का प्रयास करती जाती थी, उसी परिमाण में मुनि अपना ध्यान बढ़ाते जाते थे। वे धीरे-धीरे आत्मा की उच्च से उच्चतर भूमिका पर चढ़ते जा रहे थे।

उधर व्यन्तरी अपने प्रयत्नों को अकारथ जाता देख कर अत्यन्त क्रुद्ध हो गई। अपनी वैक्रियशक्ति की सहायता से उसने अत्यन्त विकराल पिचाशिनी का रूप धारण कर लिया और हाथ में नंगी तलवार ले कर झपटती

र्शन को भयभीत करने का प्रयत्न करने लगी। वह कहने लगी—

"ओ धर्मढोंगी ! तुरन्त उठ कर मेरे चरणों पर गिर, मुझसे क्षमायाचना कर। मैं जो कुछ तुझसे कहूँ, वह स्वीकार कर। अन्यथा मैं तेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दूँगी।"

शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाने की चिन्ता किसे थी? शरीर का मोह, जीवन का मोह तो सुदर्शन कब का त्याग चुके थे ?

प्रलोभन भी व्यर्थ।

भय भी व्यर्थ।

सुदर्शन मुनि अचल, निर्भय, शांत, निर्विकार।

उनके मन में एक ही विचार था—परीक्षा हो रही है। इस परीक्षा में मुझे उत्तीर्ण होना है। पहले इस माता ने अनुकूल परिषह दिए, अब प्रतिकूल परिषह दे रही है। मेरे लिए दोनों समान हैं। न मुझमें राग है, न द्वेष। मुझे तो प्रसन्न ही होना चाहिए कि मेरी दृढ़ता की परीक्षा हो रही है और उस परीक्षा के परिणाम-स्वरूप मेरी आत्मा की रही-सही मलिनता भी दूर हो रही है।

यही विचार करके सुदर्शन मुनि ज्यों-ज्यों व्यन्तरी उन्हें कष्ट देती जाती थी, अपने निर्मल ध्यान को बढ़ाते जाते थे।

उनका निर्मल ध्यान इतना बढ़ा कि वे अपूर्वकरण द्वारा शुक्लध्यान में प्रवेश करके अन्तर्मुहूर्त में नौवें, दसवें,

और ग्यारहवें गुणस्थान को पार करके बारहवें गुणस्थान में पहुँच गए। फिर तेरहवें गुणस्थान पर पहुँचते ही उन्हें सम्पूर्ण अनन्त और निराबाध केवलज्ञान तथा केवलदर्शन प्राप्त हो गया।

केवलज्ञान तथा केवलदर्शन प्राप्त होते ही मुनि सुदर्शन भगवान् सुदर्शन भगवान् हो गए।

देवताओं को तत्क्षण इस उपलब्धि का ज्ञान हुआ। त्रिलोक में आनन्द का वातावरण छा गया। केवलज्ञान-महोत्सव मनाने के लिए देवता उसी क्षण अपने विमानों पर चढ़ कर आए। परम आनन्द के साथ केवलज्ञान-महोत्सव मनाया गया।

तब भगवान् सुदर्शन ने उपस्थित परिषद् को धर्म का उपदेश दिया—

"हे देवो ! यह उत्सव किसी शरीर का नहीं, गुणों का है। जिन गुणों के प्रकट होने पर आपने यह महोत्सव मनाया है, वे गुण आपकी आत्मा में भी हैं। आप भी उन गुणों को प्रकट कर सकते हैं। आत्मा समान है, मेरी भी, आपकी भी। प्रश्न केवल उपाधि का है। यदि आप लोग भी अपने में रही हुई उपाधि को समाप्त कर दें, तो वे ही गुण आपकी आत्मा में भी प्रगट होंगे, क्योंकि वे पहले से ही वहाँ उपस्थित हैं।"

भगवान् सुदर्शन का उपदेश सुनने वालों के अमृत की तरह झर रहा था। उसे सुन कर उस

से ग्रसित व्यन्तरी का हृदय भी परिवर्तित होकर विशुद्ध हो गया। उसने विचार किया कि जिन भगवान् के गुणों की प्रशंसा इन्द्रादि देव भी कर रहे हैं, उन्हें कष्ट दे कर मैंने घोर पाप किया है। अब मुझे एक क्षण का भी विलम्ब न करके अपने सिर पर से इस पाप की गठरी को उतार फेंकना चाहिए.......

व्यन्तरी भगवान् से हाथ जोड़ कर कहने लगी—

"प्रभो! मैंने अज्ञानवश वहुत पाप किया है। मुझे क्षमा करिए। मैंने आपको वहुत उपसर्ग दिए हैं। उस पाप का बोझ मेरे लिए अब असह्य हो रहा है, मुझे क्षमा करके उस बोझ को कम कीजिए।"

भगवान् सुदर्शन के मुँह पर एक अलौकिक क्षमाभाव था। उन्होंने देवों को सम्बोधित करके कहा—

"इस भव की इस व्यन्तरी से मुझे अपने संयम में बड़ी सहायता मिली है। जिन गुणों के प्रगट होने से मैं इस अवस्था को पहुँचा हूँ, उनके प्रगट होने तथा इस अवस्था को पहुंचा हूँ, उनके प्रगट होने तथा इस अवस्था तक पहुँचने में इसकी वजह से वड़ी शीघ्रता हुई है।"

व्यन्तरी को सम्बोधित करते हुए भगवान् ने कहा—

"मैं स्वयं पर तुम्हारा उपकार निष्कारण ही नहीं मान रहा हूँ। चम्पानगरी की घटना ने मुझे संसार-त्याग के लिए प्रेरित किया। उसके वाद यहाँ भी तुम्हारी ही सहायता से मेरे ध्यान में उच्चता आई और

मेरी आत्मा के निर्मल गुण शीघ्र प्रकट हुए। यह तुम्हारी सहायता का ही परिणाम है। मेरे हृदय में तुम्हारे लिए वही स्थान है जो किसी भी उपकारी के लिए हो सकता है।"

भगवान् के मुख से ऐसे मधुर वचन सुन कर वह व्यन्तरी धन्य हो गई। भगवान् की प्रार्थना और उनका ध्यान करती हुई वह सम्यक्त्वधारिणी बन गई।

देवगण भगवान् का जय-जयकार करते हुए अपने-अपने स्थान को लौट गए।

भगवान् सुदर्शन ने कुछ काल तक जनपद में विचरण करके अपनी अमोघ वाणी से जीवों का कल्याण किया।

अन्त में अपना निर्वाणकाल समीप जान कर सहयोगी अवस्था से शैलेशी अवस्था में पहुँच कर और मन-वचन-काया के योग को शुद्ध करके वे सिद्ध, बुद्ध तथा मुक्त हो गए।

एक महान् जीवन इस प्रकार तपता-तपता, शुद्ध होता-होता उन्नति के अन्तिम, उच्चतम चरण पर पहुँच गया !



लेखक की कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाएँ

१. भगवान् महावीर : एक अनुशीलन ४०)
२. भगवान् पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन ५)
३. भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण १०)
४. भगवान् ऋषभदेव : एक परिशीलन (द्वि० सं०) १५)
५. जैनदर्शन : स्वरूप और विश्लेषण ३०)
६. भगवान् महावीर की दार्शनिक चर्चाएं २५)
७. जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा ३०)
८. महावीर युग की प्रतिनिधि कथाएं १२)
९. कल्पसूत्र : एक विवेचन २०)
१०. साहित्य और संस्कृति १२)
१. धर्म और दर्शन ५)
२. चिन्तन की चांदनी ४)
१३. विचार रश्मियां ७)
१४. अनुभूति के आलोक में ४)
१५. विचार और अनुभूतियां २)
१६. खिलती कलियां : मुस्कराते फूल ३)५०
१७. प्रतिध्वनि ३)५०
१८. फूल और पराग १)५०
१९. बोलते चित्र १)५०
२०. अतीत के उज्ज्वल चरित्र २)
२१. महकते फूल २)

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्कल, उदयपुर (राजस्थान)